जीवन सुधार

लेखक :
श्री पूज्य महात्मा प्रभु आश्रित जी महाराज

प्रकाशक :
वैदिक भक्ति साधन आश्रम
आर्यनगर, रोहतक (हरयाणा)

दूसरा संस्करण ११०० मूल्य : ८-०० रुपये

आषाढ़ २०५५ वि० जुलाई १९९८ ई०

जीवन सुधार

लेखक :
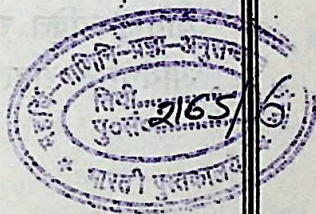
श्री पूज्य महात्मा प्रभु आश्रित जी महाराज

प्रकाशक :

वैदिक भक्ति साधन आश्रम

आर्यनगर, रोहतक (हरयाणा)

❑ प्रकाशक :
वैदिक भक्ति साधन आश्रम,
आर्यनगर, रोहतक (हरयाणा)

❑ प्राप्ति स्थान :
वैदिक भक्ति साधन आश्रम
आर्यनगर रोहतक (हरयाणा)

❑ १ जुलाई, १६६८

❑ मुद्रक
वेदव्रत शास्त्री
आचार्य प्रिंटिंग प्रेस
गोहानामार्ग, रोहतक–१२४००१
फोन नं० ०१२६२–४६८७४

ओ३म्

जीवन सुधार

विषय-सूची

ओ३म् भूर्भुवः स्वः। तत्सवितुर्वरेण्यम्
भर्गो देवस्य धीमहि। धियो यो नः प्रचोदयात्।।
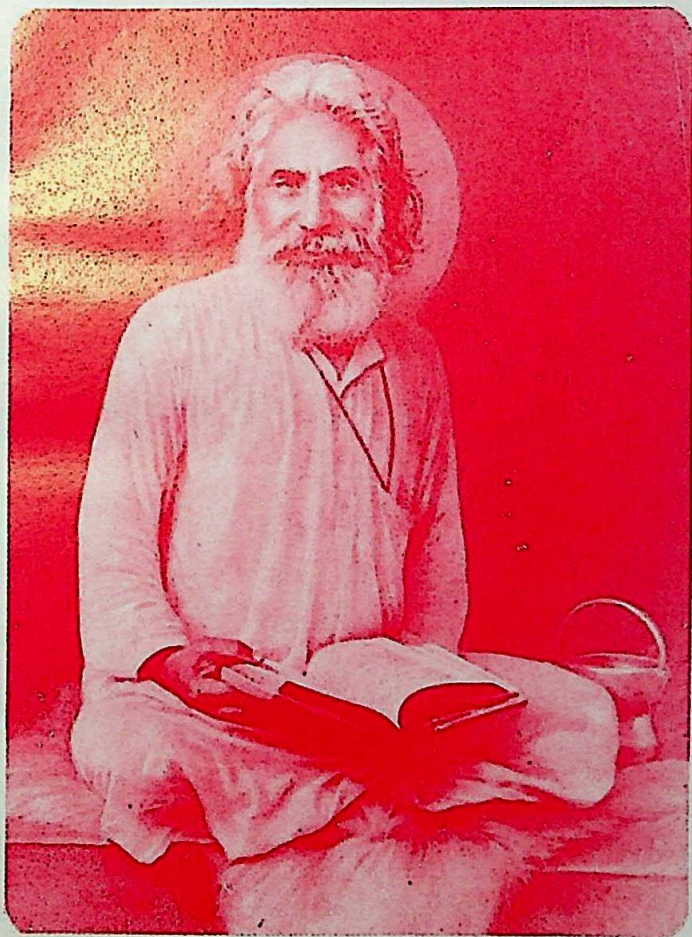
श्री पूज्य स्वामी प्रभु आश्रित जी महाराज

ओ३म्

६–३–३६ सोमवार २३ फाल्गुन, शुक्ल प्रतिपदा ५–२५ प्रातः

विवाहित को संयम का व्रत

वैदिक विवाह–संस्कार की समाप्ति पर वर–वधू को आदेश दिया जाता है कि वे तीन रात्रि भूमि पर शयन करें, और ब्रह्मचर्य व्रत पालन करें। वर और वधू पच्चीस और सोलह वर्ष से लगातार ब्रह्मचारी होते हैं। अब विवाह करने पर भी उनको तीन दिन के लिए फिर ब्रह्मचर्य का आदेश क्यों होता है ? अभी इसका कारण ज्ञात हुआ कि–(१) पहला ब्रह्मचर्य तो उनका अबोध अवस्था से स्वभावतः आरम्भ हुआ था–वह ज्ञान विद्याभ्यास के लिए था। और अब बोध की अवस्था में संकल्प से व्रत करना है।

२) जैसे मधु–पर्क क्रिया और संस्कार आदि का नमूना गृहस्थी बनने के लिए पहले सिखाया जाता है–ऐसे यह व्रत भी नमूना है कि गृहस्थ में रहते हुए भी तुमने ब्रह्मचर्य का अधिक ध्यान रखना है।

३) कन्या और वर इससे पहले अपने–अपने स्थान पर अकेले थे, उनका ब्रह्मचर्य का पालन करना कोई कठिन काम न था। परन्तु अब इन्द्रियों की और मन की परीक्षा है कि क्या वे अब आग और कपास पास–पास

होतें हुए भी अपने आपको सुरक्षित रख सकते हैं ? आज का संयम उनको ढारस दे सकेगा कि वे इस व्रत को आगे भी पाल सकते हैं।

४) जैसे बाहर (दूर) से यात्रा कर आया हुआ मनुष्य जब आता है और उसे तीव्र प्यास लगी हुई होती है—तो उसके किसी पानी के स्थान प्याऊ या गृहस्थी के पास पहुंचने पर जब वह पानी मांगता है—तो उसे तनिक दम लेकर ठण्डा पानी पीने का आदेश दिया जाता है। जिससे कि जल उसे हानि न करे। वैद्यक शास्त्रानुसार यदि ऐसा पथिक जिसने लम्बा मार्ग तय किया है—धूप में (गर्मी में) आया है—अविलम्ब शीतल जल पी लेवे—तो उसे रोग हो जाता है। ऐसे ही जिन युवक—युवती ने इतने वर्षों तक ब्रह्मचर्य रखा है—यदि अब एकदम वे गृहस्थी कर लेवेंगे—तो उनकी जो संतान पैदा होगी—वह अधीर होगी, संयमी नहीं होगी।

विवाह की समाप्ति पर दम्पती को आदेश दिया जाता है कि वे तीन रात्रि भूमि पर शयन करें—और ब्रह्मचर्य का व्रत करें, गृहस्थ न करें। यदि पहली ही रात्रि स्त्री पुरुष गृहस्थ कर लेंवे और गर्भ स्थित हो जावे तो सन्तान अधीर और असयंमी पैदा होगी। उसका कारण यह है कि स्त्री और पुरुष में जो प्रेम होना चाहिए—वह चमड़े का

प्रेम न हो, और विषय कामना की पूर्ति के अधीन प्रेम न हो—अपितु गुण और कर्त्तव्य एवं सम्बन्ध का प्रेम होना चाहिए और ऐसा प्रेम जब तक एक दूसरे का परिचय न हो—पैदा नहीं हो सकता। इसलिए जो बिना परिचय के गृहस्थ हो जाएगा—तो वह पशु—संतान पैदा करनेवाला होगा। एवं न उस उत्पन्न सन्तान का कोई विशेष उद्देश्य सम्मुख होगा। न एक दूसरे का परामर्श स्थिर करके होगा—केवल काम—आतुरता का प्रेम होगा, जो कामातुर सन्तान पैदा करेगा तथा वह सन्तान अपने आपको पहचाननेवाली न होगी। इसलिए तीन रात्रि प्रेम की भूमि को परिपक्व करने के लिए संयम दमन बल से एक दूसरे के गुण—कर्म—स्वभाव का ज्ञान प्राप्त करना चाहिए तब प्रेम परिपक्व हो जाएगा। एक दूसरे का सच्चा मान और उद्देश्य, एकवाणी, एक हृदय, एक विचार, हो सकेंगे।

धरोहर तथा स्वामित्व

संसार में प्रभु के वरदान अनेक हैं—उनमें से बहुत से वरदान तो धरोहर हैं—और एक वरदान स्वामित्व है। जो वरदान धरोहर रूप है—वह तो नाशवान् है एवं जो स्वामित्व है—वह स्थायी (जन्म—जन्मान्तर साथ रहनेवाला) है। धन, जन और यौवन के वरदान तो धरोहर हैं, पर सदाचार मनुष्य का स्वामित्व बन जाता है—उसे प्रभु नहीं छीनते।

१२–३–३६ (सप्तमी कृष्ण पक्ष) २६ फाल्गुन रविवार ४–३० सायं

संघ में शक्ति है

जाति वही उन्नति कर सकती है–जिसका पग एक होकर बढ़े। हाथ एक होकर उठे, और वाणी से शब्द एक होकर निकले। ये दोनों काम तभी हो सकते हैं–जब जाति का हृदय (उद्देश्य) एक हो तथा विचार (ज्ञान) एक हो। दूसरे शब्दों में चाल बोल के अधीन हो–और बोल उद्देश्य (लक्ष्य) के अनुसार हो। और उद्देश्य विचारपूर्वक ज्ञान के अधीन हो। जिस जाति के लोगों के भाग्य अभी नहीं जागे–उनका चिह्न यही है कि उनका पग नहीं मिलेगा। किसी का कहीं और किसी का पीछे उठेगा। आहुति कोई सवाहा से पहले डालेगा और कोई पीछे तथा बोलने में कोई आगे निकल जाएगा, और कोई पीछे रह जाएगा। कोई मन्त्र उच्चारण करें एक समान आवाज नहीं आएगी। मन में एक भाव नहीं होगा। जातियों की उन्नति का रहस्य वेद भगवान् ने कहा है–**"ओ३म् संगच्छध्वं संवदध्वं सं वो मनांसि जानताम्"**। इससे छः वस्तुएं मिलती हैं–(१) स्वतन्त्रता, (२) प्रसन्नता, (३) सम्पदा, (४) शासन, (५) ज्ञान और (६) साहस। जो जातियां विशृंखलित हैं संगठनहीन हैं–उनका बोल और चाल, उद्देश्य और

ज्ञान कभी एक जैसा नहीं हो सकता और न उनको ये छः वस्तुएं प्राप्त हो सकती हैं।

१३–३–३६ सोमवार ३० फाल्गुन, अष्टमी ३।। बजे प्रातः

कार्यों में सावधानी

चारपाई जहां पड़ी हो–वहां से उठाना चाहो–तो पहले उसके नीचे दृष्टि घुमा लो, तब उठाओ। घरों में माताएं चारपाई के नीचे कई बर्तन चीजों से भर कर रख देती हैं। कभी, न देखने से, शीघ्रता से उठाने से चारपाई का सिर या पांव लगकर ठोकर दे देता है, और वह वस्तु टूट पड़ती है–या गिर जाती है। कभी कुत्ता बैठा हुआ होता है–उसे चोट लगने से वह काट खाता है। कभी सांप बैठा होता है और वह भी काट खाता है।

७।। बजे प्रातः

स्वतन्त्रता और परतन्त्रता की तुलना

परमात्मा की सृष्टि अनन्त है। प्राणी भी अनन्त हैं। जो प्राणी अनगिनत हैं–जलचर या स्थलचर, नभचर या हिंसक, क्षुद्र जन्तु भूमितल में रहनेवाले, और चरनेवाले पशु भूमि पर रहनेवाले, इनमें से किसी को भी प्रभु पूजन का अधिकार नहीं। एक मनुष्य जाति है जो गिनी जाती है। वही प्रभु पूजा का अधिकार रखती है और इनमें से

अनेक ऐसे हैं—जिन्हें अधिकार तो है पर सामर्थ्य नहीं कि पूजा कर सकें, या पूजा का समय निकाल सकें। एवं अनेक ऐसे भी हैं जिन्हें प्रभु ने अधिकार के साथ सामर्थ्य भी दे रखा है परन्तु उनकी इच्छा ही नहीं होती—कि वे प्रभु नाम ले लें और हजारों लाखों ऐसे मनुष्य हैं जिनकी सामर्थ्य और इच्छा भी है—पर राजदण्ड के डर से पूजा करने से वंचित हैं। यह परतन्त्रता बड़ी दुःखदाई होती है। प्रभु इससे बचाये।

२. वह व्यक्ति स्वतन्त्र है—जिसके हृदय और मस्तिष्क में एकता है। जिसकी वाणी मन के अनुकूल, और जिसके हाथ और पांव वाणी के अधीन होकर चलते हैं—उसे ही सच्ची प्रसन्नता है। उसकी अपनी हकूमत और उसे ही सन्तोष का धन मिलता है। वह साहस और पुरुषार्थ कर सकता है, और विद्या—उपार्जन कर सकता है। जिस परिवार में स्त्री पति की माननेवाली है, और पति स्त्री की सुननेवाला है—उसकी सन्तान आज्ञाकारी हो सकती है। उनके घर में स्वर्ग और पूर्वोक्त छः वस्तुएं प्राप्त हैं।

११।। बजे प्रातः

दुई में भय

जो शिशु माता की गोद में है—जब उसे कोई डराता है, या किसी से वह डर जाता है—तो मुंह फेरकर माता

की ओर कर लेता है, और माता उसे छाती से लगा लेती है। पर फिर भी शिशु मां के साथ लगे रहने पर भी मन में डरता है। परन्तु जो बालक माता के गर्भ में अन्दर छिपा हुआ है—वह किसी से भी नहीं डरता। न कोई शक्ति उसे डरा सकती है। जब तक थोड़ा भी अन्तर है—तब तक भय लगा ही रहता है, यद्यपि उसकी रक्षा होजाती है और उसे भी विश्वास और निश्चय होता है—पर अन्तर के कारण भय रहता है। ऐसे ही जो प्रभुभक्त जो प्रभु के समर्पण होचुका है—प्रभु में समा गया है—उसे तो कोई भी संसार की शक्ति भयभीत कर ही नहीं सकती। और जो भक्त कुछ अपना भी अपनापन रखता है—उसे जब कोई डराता है—या वह डर जाता है—तो वह भी प्रभु की ओर मुख कर लेता है। अर्थात् उसके भजन (शरण) में बैठ जाता है। उसकी रक्षा अवश्य होजाती है—पर मन में थोड़ा डर बनाए रखता है।

संग का रंग

जहां कोई बीमारी पड़ जाती है—प्लेग, ताऊन, हैजा, मलेरिया आदि तो वहां की रखी हुई चीजें भी दूषित समझी जाती हैं। डाक्टर—हकीम लोग कहते हैं कि रोग के कीटाणुओं (जर्म्स) का प्रभाव उन निकटस्थ वस्तुओं में

घुस जाता है। ऐसे ही पवित्र वायुमण्डल, शुद्धस्थान–यज्ञशालाओं में जो मेल और शेष यज्ञ का पवित्र भावनाओं से रखा हुआ होता है और वहां शुभ–पवित्र विचारों और मन्त्रों द्वारा घिरे हुए स्थान पर जो वस्तु होगी–वह भी अवश्य उन पवित्र प्रभावों से प्रभावित होचुकी होगी। इसलिए वहां का जल, यज्ञ–शेष लोगों के लिए अमृत का काम देता है।

१४–३–३६ मंगलवार ७–५५ प्रातः से
१ चैत, नवमी १०–२५ तक

ज्ञान अज्ञान का रंग

१. स्वस्थ मनुष्य की आंख से जो मैल निकलती है (गीग) वह सफेद रंग की होती है और कान से जो मैल निकलती है–वह खाकी (भूरी) रंग की होती है एवं नाक और मुख से भी सफेद रंग की श्लेष्मा (बलगम) निकलती है। परन्तु मूत्रेन्द्रिय और गुदा का मल पीलिमा लिए होता है। प्रायः विशेष अवस्थाओं में विशेष रंग का होता है। ज्ञानेन्द्रियां सतोगुण रूप हैं–इसलिए उनसे मल भी उसी रूप से निकलता है। परन्तु जब उनमें दोष आजाए, मनुष्य रोगी हो जाए, तो मुख का मल हरा, खाकी, नीला, पीला, नासिका का मल भी ऐसे ही, और कान का काला और खाकी मल निकलता है तथा आंख का खाकी–सा

मल निकलता है। अज्ञान का रंग काला–सियाह खाकी होता है, और ज्ञान का सफेद।

कर्म कसौटी है

२. यदि ज्ञानेन्द्रियों में रोग हो–तो उन्हीं को देखा जाता है, और उन्हीं में औषधि डाली जाती है। परन्तु यदि शरीर में दोष हो–तो कर्मेन्द्रियों से पहचान, परीक्षा की जाती है–मूत्र देखने से, नाड़ी–हाथ देखने से, जीभ देखने से। एवं औषधि भी पेट (नाभि) में डालकर उपचार किया जाता है तब रोग दूर होता हे। कर्म भी नाभि है–संस्कार चक्र की, या शरीर चक्र की। जैसे शारीरिक रोग का निदान कर्मेन्द्रियों द्वारा किया जाता है ऐसे ही मानसिक आत्मिक रोग का निदान भी कर्म से ही हुआ करता है।

स्वाश्रित-पराश्रित में अन्तर

३. बड़े नगरों में सिपाही चौराहे पर खड़ा रहता है–परन्तु वह साइकिल, मोटर गाड़ी, टांगे को रोकता है। मोटर टांगेवाले बिना उसके हाथ के संकेत किये आगे नहीं बढ़ सकते। परन्तु जो पैदल है, उसे पूछने की आवश्यकता ही नहीं। न सिपाही उसे कभी रोकता है। अर्थात् जो अपने पैरों पर खड़ा हुआ है–अपने पैरों, अपने

सहारे से चलता है–स्वतन्त्र है–उसे कोई रुकावट नहीं। पर जो दूसरों के आश्रय हैं–वे मोहताज हैं, दास हैं–उन्हें सिपाही भी रोक सकता है।

फल फूल पत्ते और डाली में भिन्नता

४. समस्त वनस्पति जाति के चार भाग हैं–फल, फूल, पत्ते और डण्डी। जितने भी वृक्ष–पौधे या वनस्पति या बेल–बूटे हैं सबके पत्ते हरे, और डण्डी भूरी प्रभु ने बनाए हैं। परन्तु फल और फूल में रंग रूप भिन्न, और गन्ध भिन्न–भिन्न प्रकार की है। एक की दूसरे से नहीं मिलती। कोई नीला, कोई पीला, कोई लाल, हरा और श्वेत आसमानी, केसरी। किसी का स्वाद खट्टा, चरपरा, किसी का कड़वा, मीठा। किसी की गन्ध भीनी सुहावनी और किसी की नाक–भौं चढ़ावनी है।

कर्त्तव्यपरायण

५. लाट साहब (गर्वनर महोदय–पंजाब, लाहौर) की कोठी के बाहर सिपाही वर्दी धारण किये, संगीन और निशान झण्डा फहराये ड्यूटी पर खड़ा है। ऐसे सावधान खड़ा हुआ है कि बात भी करता है–तो न गरदन मोड़ता है, न हाथ उठाता है। जिह्वा उसकी बोल रही है ऐसा शरीर ड्यूटी पर अकड़ा हुआ है और आंख दृष्टि रख

रही है। पीछे का आदमी बात करता है–तो भी गरदन नहीं मोड़ता। ऐसें ही उत्तर देता है। उसके सामने से उत्तर और दक्षिण से, दाहिने और बायें से प्रतिक्षण साइकल टांगे, मोटरें चल रही हैं। वह जरा दृष्टि झुकाए तो पता नहीं क्या का क्या हो जाए। इसलिए वह सब काम गौण रूप से करता है–पर मुख्य अपनी ड्यूटी को रखता है। प्रभु–भक्त भी संसार में ऐसे सिपाही की भान्ति कार्य व्यवहार करता है। उसकी दृष्टि, उसका मन प्रभु में रहता है–और स्वयं सब व्यवहार गौण रूप से करता जाता है।

आनन्दप्राप्ति के लिए स्वामी बनना पड़ेगा

६. पशु कभी झूला नहीं झूलता। मनुष्य झूलता है। पर जिसने झूले में झूलना हो, उसे स्वामी बनना चाहिए। क्योंकि झूले में बैठकर स्वयं नही झूला जाता, सेवक की आवश्यकता होती है। दास–सेवक झूला नहीं झूल सकते। स्वामी (स्वतन्त्र) ही झूल सकते हैं। आनन्दप्राप्ति के लिए मनुष्य को स्वामी बनना पड़ेगा (अपने आप का स्वामी)। जिसने अभी अपने आपको नहीं जाना–वह दास है। उसे स्वर्ग कहां ?

विवेक

७. मोटरगाड़ी दौड़ी आरही है। एक उन्मत्त (पागल)

आगे बेपरवाही से चल रहा है। ड्राइवर हार्न (Horn) देता है–वह सुनता ही नहीं। उसे पता ही नहीं। मोटर निकट पहुंच गई। ड्राइवर से ब्रेक लगाया और मोटर खड़ी हो गई। उन्मत्त की जान बच गई। यदि ब्रेक न होती–तो वह (बेपरवाह) कुचला जाता। ऐसे ही संसार के उन्मत्त (विषयों में मस्त) बेपरवाह मनुष्यों को भी यदि बचा सकती है–तो उस नेता की शक्ति, जिसके पास विवेक है। विवेक मनुष्य के मस्तिष्क रूपी इंजन की ब्रेक है।

१५–३–३६ बुधवार १० बजे प्रातः
२ चैत, दशमी

जीवन यात्रा में हर समय सावधान

बड़े नगरों में सड़कों के साथ फुटपाथ (Foot Path) बने हुए होते हैं। सड़क पर परिवहन (Trafic) का बड़ा दबाव हाता है। जो व्यक्ति सरकार के बनाए विधान के अनुसार फुटपाथ पर चलता है उसे बड़ी निश्चिन्तता रहती है। सैकड़ों गाड़ी और मोटरें गुजरती रहे–उसे आंच नहीं पहुंचती। परन्तु जो व्यक्ति फुटपाथ छोड़कर सड़क पर चलता है, उसका जीवन संकट में रहता है। उसे अपनी रक्षा स्वयं बड़ी सावधान से करनी पड़ती है। पांव सड़क (भूमि) पर और आंखें मोटर, गाड़ी या लारी की ओर रहती हैं। तब वह अपने लक्ष्य–स्थान पर पहुंच

सकता है। ऐसे ही यह संसार है, और इसमें विषय–वासनाओं का परिवहन (Trafic) बड़े वेग से चल रहा है। आगे और पीछे दोनों ओर, एक के बाद दूसरी लहर चल रही है। जैसे एक मोटर के पीछे दूसरी मोटर और साइकल दौड़ रही है। जो व्यक्ति विषय–वासनाओं के चक्कर में नहीं आता, और किनारे पर एकचित्त होकर चल रहा है, उसे तो विषय–वासनाओं की आंच ही नहीं पहुंचती। एवं जो इस चक्र में से गुजरता है–तो उसे बड़ी सावधानी की आवश्यकता है। परिवहन के संकट से तो मनुष्य प्रायः बचा भी रहता है–पर विषय–वासनाओं के परिवहन से कोई विरला ही बच सकता है। नहीं तो सब कुचले जाते हैं।

१६–३–३६ १० बजे रात्रि

६ चैत्र, चतुर्दशी (व्रत)

पूरे तप से मन पकता है

तवे के नीचे आग जल रही है, तवे को अभी सेंक न लगे, और रोटी डाल दी जावे–तो रोटी नहीं पक सकती। और यदि सेंक धीमा–धीमा हो, तवा पूर्ण गर्म न हो, तो वह रोटी ठीक नहीं पकेगी। ऐसे ही जब तक जप–तप आदि से पूर्णतया आत्मा भरपूर नहीं–तब तक वह सफल नहीं होती तथा मन की संकल्प–शक्ति प्रभावित नहीं कर सकती।

२१–३–३६ मंगलवार ५ बजे प्रातः

८ चैत्र, अमावस्या

नमस्कार का व्यापार

जब कोई मनुष्य किसी वयोवृद्ध सन्त, साधु, महात्मा के चरणों में वन्दना करता है, तथा चरण–स्पर्श करता है, तो वह अपने अहंकारभाव की भेंट उसके चरणों में देता है। उनके चरणस्पर्श करने से वृद्धजन जब प्रसन्न हो जाते हैं–तो समझो कि वे उसकी अहंकार की भेंट स्वीकार कर लेते हैं तब वही अहंकार उनके पास रह जाता है। आशय यह है कि आशीर्वाद जैसी उत्तम वस्तु देकर नीच वस्तु ग्रहण करते हैं। घाटे का सौदा कर घाटे में रह जाते।

२२–३–३६ बुधवार १०।। बजे प्रातः

६ चैत शुक्ल प्रतिपदा संवत् १९९४

इन्द्रियदमन का उपाय

भोजन खाने–बनाने का भाव तीन प्रकार का होना चाहिए। (१) भोजन इसलिए बनाया जावे कि इन्द्रियों का दमन हो सके। तब भोजन बनाने में भी दमन शमन वृत्ति से बनाया जावे। तथा स्वयं वस्तु, जो बनाई जावे, वह वस्तु भी दमन करने में सहायक हो। एवं खाया भी दमन

से जावे। इतनी बातें हों—तब मनुष्य भोजन के द्वारा इन्द्रियों का दमन कर सकता है। जो मनुष्य भोजन को प्याज और मसाले से स्वादिष्ट बनाना चाहता है—वह खानेवाले को कब दमन वृत्ति पैदा करने देगा ? तथा खानेवाला दमनवृत्ति से खाएगा भी कैसे ? वह तो लोभवशात् अधिक खा जायेगा। स्वाद लेता रहेगा और दमन टूटता जाएगा। सात्त्विक पदार्थ सात्त्विक भाव से बनाये गए ही—दमन में सहायता देते हैं। जैसे कोई नाजुक काम करनेवाला उधर ही वृत्ति को जोड़े रखता है, दूसरी ओर नहीं जाने देता—कि काम बिगड़ न जाए। ऐसे जो मनुष्य भोजन बनाने में वृत्ति एक करके भोजन को अतीव मूल्यवान् कार्य जानकर बनाता है—वह भोजन अवश्यमेव खानेवाले को दमन की प्राप्ति कराता है।

२) दानभाव रखकर बनाना—खाना चाहिए। जब भोजन खावे—तो पूर्व उसके दानभाग निकाला आवे, और फिर खाया जावे तथा उस भोजन को खानेवाला, भोजन को प्रभु का दान समझकर खाये—तब मनुष्य में दान—वृत्ति जागृत होती है तथा धन्यवाद वृत्ति बढ़ती है। एवं वह स्वयं भी लोगों के धन्यवाद का पात्र बन जाता है।

३) दयाभाव से बनाया हुआ, दयाभाव से खाया हुआ,

दयाभाव से खिलाया हुआ और शान्तचित्त से खाया हुआ अन्न, दया पैदा करता है। जलते–जलते जो भोजन बनाया जाता है–वह खानेवाले को दया कब दे सकता है?

४) अन्न का बोना सरल है, परन्तु भूमि का बनाना कठिन है। ऐसे ही भोजन का खाना सहज है–परन्तु बनाना (पकाना) कठिन काम है।

११।। बजे

चर्चा और चिन्ता

किसी एक साधन और अभ्यास में लगा हुआ साधक यह इच्छा बनाये रखता है कि "मुझे फल–मेवा–दूध–घी तर पौष्टिक पदार्थ अवश्य खाने चाहिएं, और मुझे मिलने चाहिएं–क्योंकि मेरी शक्ति व्यय होती है। न मिलने से मैं दुर्बल हो जाऊंगा, और अधिक अभ्यास न कर सकूंगा।" तो वह अपनी आत्मा को बलवान् बनाने के स्थान पर निर्बल बनाने की सामग्री जुटा रहा है। वह शरीर को बलवान् बनाने की चिन्ता में है। तथा अभ्यास–साधना उसका बहाना बनी हुई है। आत्मा का बल तो सन्तोष और निस्पृह बनाने में हो सकता है। ऐसे व्यक्ति अभ्यास या साधना संकल्प से नहीं करते हैं, अपितु दूसरे की देखा–देखी करने का यत्न करते हैं। उनका लक्ष्य या

ध्येय आत्मा को बन्धन से मुक्त कराने का नहीं हो सकता। यदि वे ऐसा समझते हैं–तो वे ठगे जा रहे हैं। जो मनुष्य (साधक) अभ्यास या साधना केवल अपनी आत्मा–शुद्धि के लिए करता है वह पवित्र–आत्मा ही उस प्रभु–पवित्र का पुत्र है। एवं सब माया के पदार्थ प्रकृति की निजी उपज प्रभु के अपने किये हुए हैं। उसका अधिकारी (स्वामी) प्रभु का प्यारा–पुत्र है ही। तब वह पदार्थ स्वयं उछल–उछल कर उस प्रियतम के पुत्र का आहार बनना चाहते हैं। अपनी आहुति देना चाहते हैं। जैसे लोहा चुम्बक को देखते ही फुदकता–कूदता और उछलकर उसके संग जा लगना चाहता है। ऐसे ही पदार्थ भी उस पवित्रात्मा के शरीर को देखकर उस शरीर के संग होना चाहते हैं एवं लोगों में प्रभु स्वयं श्रद्धा उत्पन्न करके अपने अभ्यासी भक्त के पास बिना उसकी इच्छा संकल्प के सब उत्तम वस्तुएं पहुंचवाता है, प्रभु ईमानदार स्वामी है और सावधान हितचिन्तक़ हितसाधक माता है–जो मजदूरी करनेवाले, परिश्रम करनेवाले पुत्र को बिना मांगे ही उसके अनुकूल हितकर वस्तु स्वयं पहुंचाने का उत्तरदायी है। साधक का तो चर्चा करनी चाहिए चिन्ता नहीं (चर्चा–स्वामी की चर्चा), (चिन्ता–खाने की चिन्ता)।

२३–३–३६ बृहस्पतिवार ५ बजे प्रातः
१० चैत सम्वत् ६६, द्वितीया

होनहार का उत्साह बढ़ाओ

होनहार बालक पढ़कर जब विद्यालय से आते हैं तो घर से बाहर के आए व्यक्तियों को देखकर बिना विश्राम किये, या रोटी मांगे—बड़ी रुचि से अपनी विशेषता (गुण) स्वयं दिखाने लग जाते हैं। या तो पुस्तक खोलकर पढ़ने लग जाते हैं या झटपट तख्ती निकालकर लिखने लग जाते हैं या तख्ती धोने (साफ करने) लग जाते हैं। यह उनके मन में उमंग होती है कि देखनेवाले उसको शाबाश दें, उत्साह बढ़ावें, प्रशंसा करें। इससे उनमें जागृति और अधिक परिश्रम—वृत्ति आजाती है। यह चिह्न बचपन का है और प्राकृतिक है। और इसी प्रकार जो साधक नई साधना या अभ्यास में लगता है—और उसे रुचि होती है, लगन से प्रभुचरणों में बैठता है—तो वह भी समय असमय का ध्यान न करके—अपने कार्यक्रम को दिखाना चाहता है। जब किसी नए सज्जन का संग पाता है, उसका भी हार्दिक भाव उसे दिखाने का होता है कि वह यह समझे कि यह व्यक्ति बड़ा अभ्यासी और प्रभुभक्त है। यह चिह्न भी उसके बचपन का है, आध्यात्मिकता के बचपन का है इसलिए यदि कोई अभ्यासी ऐसा करता है तो देखनेवालों

को ग्लानि नहीं करनी चाहिए। ताना देना या उलटी राय नहीं रखनी चाहिए। उसे इस क्षेत्र में बच्चा समझकर यह क्रिया उसकी प्राकृतिक समझनी चाहिए।

सौन्दर्य परिपक्वता में

कच्ची ईंटों की दीवार या फर्श में कोई टीप नहीं करता। न सुर्खी चूना भरा जाता है और न ही सीमेंट का पलस्तर हो सकता है। पक्की ईंटों पर ही टीप, सुर्खी, चूना, पलस्तर, सीमेंट हो सकता है और हुआ करता है। ऐसे ही जिनका चरित्र परिपक्व होगया उनसे शोभा और सौन्दर्य बढ़ता है।

२४—३—३६ शुक्रवार ६। बजे प्रातः

११ चैत १६६६, तृतीया

कर्म, ज्ञान और भोग का स्वरूप

(१) कर्म तो है उधार चलाना। ज्ञान है अन्दर सम्पत्ति का समेटना।

(२) कर्म तो माता है और भोग बछड़ा है। जैसे बछड़ा अपनी मां के पीछे भागता रहता है, ऐसे ही भोग कर्म के पीछे लगा रहता है। जिसके मारे (मन्द) हुए हैं, वह वैसा है जैसे बच्चे की मां मर गई हो और वह दूसरों के द्वारों का मोहताज हो।

१।। बजे दिन

जल से शुद्धि

(१) बाहर की वस्तुएं या कपड़े, मैल या जूठन जल से शुद्ध की जाती है। तो अन्दर की (अन्तःकरण की) मैल भी आंखों के आंसुओं (जल) से शुद्ध होगी। जो व्याकुलता की रगड़ से धारा इस पर बहेगी–तो मैल धुल जावेगी।

पाप-फल से शिक्षा

(२) किसी मुर्गे की शकल में कान पकड़े देखो–तो प्रभु से तत्काल डरो कि कहीं तुम से ऐसी क्रिया न होने पावे। अपने बचाव के लिए वही चित्र सामने रखो, और प्रभु का धन्यवाद भी करो कि तुम को इस पाप से बचाया है।

२५–३–३६ शनिवार ८।। बजे प्रातः
१२ चैत १६६६ चतुर्थी (लगभग)

वीर्य-सन्तान और मूत्र सन्तान

जो बच्चे वीर्य से पैदा किये जाते हैं, वीर्य (सुरक्षित धन्न) दान देकर, वही वीर बनते और वीरता के काम करते और वीर–सच्चे वीर कहलाते और पुकारे जाते हैं। सामान्य बच्चे तो आजकल मूत्र से पैदा होते हैं–अर्थात् जो लोग वीयै को मूत्र की भान्ति बहानेवाले हैं, उनके

बच्चे संसार में मूत्र ही होते हैं। जैसे मूत्र मल समझा जाकर फैंका जाता है, ऐसे वह सन्तान भी व्यर्थ फैंकने की सी बनती है।

विशेष आत्माएं वाटर प्रूफ (Water Proof)

जो विशेष आत्माएं माता–पिता के वीर्य–गर्भ में आती हैं–चाहे उनके माता–पिता भी मूत्र की तरह वीर्य बहानेवाले होते होंगे, परन्तु वे आत्माएं ऐसी होती हैं, जिन पर माता–पिता के दुर्विचारों का प्रभाव नहीं पड़ सकता। जैसे बिजली के बल्ब को आग (सेंक) नहीं लगाती। ऐसे ही विशेष आत्माओं पर बुरे विचार प्रभाव नहीं कर पाते, उनके भीतर प्रवेश नहीं कर पाते। जैसे मोमजामे (Water Proof) पर पानी पड़ता है–पर वह नहीं भीगता।

२६–३–३६ रविवार ६। बजे सायं
१३ चैत १६६६, पंचमी

साधारण या महात्मा की चिकित्सा

साधारण व्यक्ति ज़ब रोगी होता है–तब उसकी तो साधारण रीति से दवाई हुआ करती है। पर जब कोई देश या जाति का सरदार (प्रधान व्यक्ति) रोगी होता है–तो डाक्टरों और वैद्यों की दवाओं के अतिरिक्त तुरन्त ही समाचार पत्रों द्वारा घोषणाएं निकलती हैं, कि देश और जाति के सब लोग, छोटे–बड़े परमात्मा से प्रार्थना

करें। एवं तब तक बड़ी लग्न से प्रार्थना की जाती है, जब तक वह भयानक दशा से बाहर होकर स्वस्थ नहीं हो जाता। राजा हो या सम्राट्, नेता हो या महान्—आत्मा—महापुरुष हो।

२८—६—३६ मंगलवार ५ बजे प्रातः
१५ चैत १६६६ अष्टमी

सुधारक की आवश्यकता

(१) क्या कारण है कि भजनों में लोग भगवान् कृष्ण को बुलाते हैं—"आ जा बंसरीवाले, आ जा......।" ऋषि दयानन्द जी को बुलाते हैं कि "आ जा वेदोंवाले आ जा....।" भगवान् राम आदि को नहीं बुलाते ?

भगवान् कृष्ण और ऋषि दयानन्द सुधारक थे।

किनके दोष दूर नहीं होते

(२) जो दूसरों की नहीं सुनते और अपनी ही कहे जाते हैं—उनकी अशुद्धियां, त्रुटियां, भूलें और दोष दूर नहीं हो सकते। चाहे वर्षों बीत जावें।

३०—३—३६ बृहस्पतिवार ७३/४ बजे प्रातः
१७ चैत, १६६६ दशमी

रस में चस (रस में स्वाद)

जब किसी भाषण देनेवाले के भाषण में बड़ा रस होता

है—न तो समय का पता लगता है, न लोगों की वृत्ति और कहीं जाती है अपितु उन्हें आवश्यक कार्य भी भूल जाते हैं। जब भाषण समाप्त होता है तो दो घण्टे गुजर जाने पर ऐसा प्रतीत होता है—"ओ हो जल्दी ही समाप्त होगया। पता ही नहीं लगा।" अर्थात् समय थोड़ा लगा प्रतीत होता है। परन्तु जब भाषण देनेवाले के भाषण में रस न आवे—तो थोड़ा समय भी बहुत प्रतीत होने लगता है। स्वयं वक्ता को भी ऐसा लगता है कि बोलते—बोलते बहुत समय होगया है। जब घड़ी देखता है—तो अभी १५ मिनट ही बीते होते हैं—तो उसे भी बहुत पहाड़ मालूम होता है।

२—४—३६ रविवार कुटिया
२० चैत १६६६ (व्रत चौदस) वाज ७।। बजे प्रातः

(१) वाज (अरबी शब्द) और वाज (संस्कृत शब्द) है। वाज का अर्थ है उपदेश। वाज का अर्थ है ज्ञान।

शक्ति शब्द में है

(२) आवाज (शब्द ध्वनि) की बड़ी शक्ति है। आवाज एक हथियार है प्रोपेगण्डा का। मनुष्य प्रोपेगेण्डा नहीं करता उसकी आवाज करती है। धनी मनुष्य की आवाज निर्बल है—तो वह प्रोपेगेण्डा नहीं कर सकता। निर्धन की आवाज बलवती है—तो वह सफल हो जावेगा। ये जो

नारे लगाते हैं–'अमुक जिन्दाबाद' 'अमुक मुर्दाबाद' और 'अमुक कामयाब'–स्थान–स्थान पर मिलकर बड़े जोर से–जोश से जब बोला जाता है–तो यही आवांज स्वयमेव लोगों के दिलों में परिवर्तन करती रहती है। यह गुप्त हथियार है। यदि एक निर्बल पुरुष–निर्धन भी, जो यह समझे कि मेरी सुनाई नहीं होती–तो वह एकान्त–स्थान (जंगल) में बड़े जोर के साथ बोलकर अकेला ही उस आवाज को फैला सकता है। यद्यपि समय लग जायेगा पर सफलता अवश्य होगी। उसके विचार, उसकी भावना वहां तक पहुंच जावेगी–एक दिन जहां पर पहुंचाना चाहता है।

१२–२०

जीवन ज्योति अन्दर

मकान अन्दर से बन्द हो तो जाना जाता है कि अन्दर कोई प्राणी है और वह सर्वश्रेष्ठ प्राणी ही हो सकता है अन्य नहीं। क्योंकि पशु अन्दर से दरवाजा बन्द नहीं कर सकता। मनुष्य ही कर सकता है। यदि बाहर से बन्द हो तो यही प्रकट होता है कि अन्दर कोई नहीं मकान जीव से रहित है। ठीक ऐसे ही जिस मनुष्य के बाहर के पट बन्द हैं–अन्दर के नहीं–वह तो कन्जूस है। जीवित–जीवन का आदमी नहीं तथा जिसके अन्दर

के पट बन्द हैं अर्थात् संयम किया हुआ है, वह जीवित–जागृत मनुष्य है। संयम नहीं, तो पशुवत् है।

३–४–३६ सोमवार कुटिया
१२ चैत पूर्णमासी ८ बजे प्रातः

तीव्रगति से बढ़ो

श्रेष्ठ पुरुष तुम्हारे आगे हैं और दुष्ट–डाकू तुम्हारे पीछे, तुम मध्य में। दोनों का अन्तर तुम्हारे से बराबर है। पर तुम पग बहुत मन्द गति से उठा रहे हो। श्रेष्ठ को खो बैठोगे, वे दूर निकल जायेंगे, और डाकू तुमको पकड़ लेंगे। फिर तुम लुट जाओगे। आगे जा नहीं सकोगे। अतः अपनी गति जरा तीव्र करो कि तुम श्रेष्ठ लोगों के साथ जा मिलो। फिर तुम सुरक्षित हो जाओगे। दुष्ट तुम से दूर रह जाएंगे–उनकी पकड़ से निकल जाओगे।

११–४–३६ प्रातः
२६ चैत–सप्तमी ४–४०

आनन्द असली दक्षिणा

एक छात्र जब वर्ष भर की मेहनत करके परीक्षा देता है और जब वह पास हों जाता है तो उसे जो प्रसन्नता होती है वह प्रसन्नता उसके लिए दक्षिणा है। प्रत्येक

कार्य की सफलता पर जो आनन्द आता है, वही असली दक्षिणा है।

६ बजे प्रातः

निर्बल कौन ?

जिन लोगों ने अपने आप को बड़ा मान लिया होता है वह सत्संगियों में भी मिलकर प्रभु–भजन गाने में शर्माते हैं और यदि विवशता से बोलना भी पड़े तो बहुत ही धीमी आवाज से गाते हैं। यूं कहें कि उनमें जबान ऐसी है जैसे निर्धन आदमी धनी के सामने नहीं बोल सकता। ऐसे ही बड़े आदमी सचमुच उस प्रभु के सामने निर्धन से अधिक दर्जा नहीं रखते। किसी बड़े के सामने वही दिलेरी से बोल सकता है जिसमें शक्ति है, या बड़े का उससे प्यार प्रेम है। दूसरा जैसे रोगी भी जोर से नहीं गा सकता–क्योंकि वह अन्न भोजन न खाने से निर्बल होता है। ऐसे ही जिसे प्रभुभक्ति का भोजन नहीं मिलता, वह भी निर्बल रोगी होता है।

१२–४–३६ बुधवार प्रातः
३० चैत सम्वत् १६३६ (अष्टमी) ४–५८

ऐश्वर्य, मान, बुद्धि

ऐश्वर्य (धन) मान (इकबाल–प्रतिष्ठा) बुद्धि (अक्ल) किन कर्मों का फल है ? ये तीनों वस्तुएं मनुष्य के लिए

ही हैं। जो विशेषता मनुष्य में (पशु से) परमात्मा ने बनाई है–उसका ही यह फल हो सकता है।

(१) पशु दान, त्याग, सेवा, संकल्प से नहीं कर सकता। मनुष्य ही ऐसा कर सकता है। इसलिए दान का फल ऐश्वर्य सम्पत्ति है।

(२) और जन–सेवा का फल मान (इकबाल) प्रतिष्ठा इज्जत, हकूमत (शासन) है।

(३) बुद्धि दो प्रकार की होती है–एक प्राकृतिक, दूसरी आध्यात्मिक। यह बुद्धि यज्ञ द्वारा मिलती है। ब्रह्मयज्ञ (प्रभुभक्ति–गायत्री आदि के जाप, विचार, ध्यान) से उत्तरोत्तर आध्यात्मिक बुद्धि प्राप्त होती है। और अग्निहोत्र से अश्वमेध पर्यन्त यज्ञों से उत्तरोत्तर प्राकृतिक बुद्धि का विकास होता है।

१३–४–३६ बृहस्पतिवार ६ बजे
प्रथम बैशाख नवमी कृष्णपक्ष रात्रि

सत्याग्रह

क्या कारण है कि दक्षिण देश हैदराबाद में यज्ञ कर्म पूजा आदि की निजाम सरकार ने मनाही कर रखी है और हमारी प्रार्थना अस्वीकृत हुई और सत्याग्रह आर्यों का आरम्भ हुआ ?

इसमें प्रभु का कोई विशेष रहस्य है। मैं अब समझ रहा हूं कि आर्यजनता (आर्यसमाज) कर्मकाण्ड (भक्ति) से बहुर दूर–दूर रही और वैदिक धर्म की ओर लोग कम झुकाव रखने लगे। वेद प्रभु की कल्याणी वाणी है जिसके पुनरुद्धार के लिए ऋषि दयानन्द महाराज को परमात्मा ने इस भारत देश में पैदा किया था–आर्यसमाजियों की यज्ञ और भक्ति दोनों में अरुचि होने से लोगों पर प्रभाव न पड़ता था। परमात्मा ने इसलिए इसको जीवित करने के लिए और आर्यसमाजों को जागृत करने के लिए यह लीला बरती। कर्म की दिशा दक्षिण की है–और उपासना भक्ति की उत्तर की। दक्षिण दिशा का अधिपति इन्द्र है जो टेड़ी चालवाला है। जिसका मन–दिल तिरश्चिराजी जिसे वेद में कहा गया है। भारत के दक्षिण देश में निजाम का राज्य है–और वह टेड़ी चाल चल रहा है। जहां की ६० प्रतिशत जनता आर्य–हिन्दू जाति है। उनको यज्ञ करने और मन्दिर बनाने, पूजा करने, सत्संग कराने, उपदेश, भजन आदि की मनाही कर दी है। यही कर्म है। और इधर प्रभु ने आर्यनेताओं और आर्यजनता में प्रेरणा कर दी कि वे एक उद्देश्य और मुख्य उद्देश्य अब समझ लेवें। समस्त भारत के आर्यहिन्दुओं का ध्यान दक्षिण देश की ओर यज्ञ करने–कराने और इसके लिए स्वतन्त्र अधिकार दिलाने की ओर होगया है और वह भी सत्याग्रह

के हथियार से। जैसे तिरश्चिराजी रक्षिता पितर हैं और उनका वाण उपदेश है। अब सारे आर्यजगत् की एक–आवाज है और तन–मन–धन से बलिदान कर रहा है कि हम मर जायेंगे–या यज्ञ घर–घर में कराकर आयेंगे। भाव यह कि दक्षिण देश जो कर्म का है, उससे ही अब पूरा यज्ञकर्म का प्रारम्भ होगा। और पश्चिम देश में फैलता हुआ उत्तर की ओर पहुंचेगा। तब भक्ति–पूजा–उपासना की ओर भी आर्यों की रुचि होगी। पितर (विद्वान्) संन्यासी–महात्मा ही इस युद्ध के नेता बने हुए हैं।

२. देश के स्वराज्य के लिए जो सत्याग्रह युद्ध आरम्भ हुआ था वह भी वर्धा से हुआ था जो पंजाब, उ० प्र० से दक्षिण में है। और यह धर्म–युद्ध उससे भी दक्षिण में है। अर्थात् दक्षिण से ही आरम्भ हुआ। अतः यह चिह्न है कि अवश्य प्रभु इसे विजय प्राप्त करायेंगे। यज्ञ का युग समस्त आर्यजगत् में आरम्भ हो जाएगा। आर्य लोग कर्मकाण्डी बन जायेंगे और लोगों में वैदिक–धर्म की ओर रुचि सहल हो जावेगी।

१४–४–३६ शुक्रवार
बैशाख–दशमी ५।। बजे प्रातः

सत्य में स्वतन्त्रता

आवाज अन्दर से आरही है–"हैदराबाद धर्मयुद्ध" के

लिए स्वतन्त्रता की आवश्यकता है। यज्ञ–कर्म, सत्संग, ईश्वरपूजा के लिए स्वतन्त्र अधिकार मिलें। उसके लिए सत्याग्रह का हथियार है। उधर पंजाब में तो पूज्य स्वामी सत्यानन्द जी महाराज लाहौर बैठे ला–होर ला–होर कह रहे है। सेना ला–होर, रुपया ला–होर–आदेश कर रहे हैं। और उधर शोलापुर में पूज्य स्वामी स्वतन्त्रतानन्द जी महाराज स्वतन्त्रता के लिए हैदराबाद में शोला (ज्वाला) भेज रहे हैं। इसलिए जहां सत्य है वहां स्वतन्त्रता भी साथ है।

१६–४–३६ रविवार ३ बजे
४ बैशाख–द्वादशी मध्याह्नोपरान्त

समता

प्रश्न–एक साधक ने कहा 'मैं आसन भी लगा बैठता हूं–फिर भी जप में नीन्द आजाती है ?

उत्तर–आसन तो ठीक लग जाता होगा पर शरीर सम अवस्था में नहीं रहता तब मेरुदण्ड ढीला हो जाता है। तब मनकों के झुकाव से ऊंघ आकर सिर झुका देती है। सीधे सम रहने और सही आसन लगते रहने पर चित्त एक सम–संयम में रहता है। और ढीला हो जाने पर प्राण प्रभावित हो जाता है और फिर उससे झुक जाता है।

१७–४–३६ सोमवार ८ बजे सायम्
५ बैशाख त्रयोदशी

आत्मिक भोजन की सात धातु

भोजन अन्न जब मनुष्य खाता है–तो उसके सात धातु और उपधातु और सात मल बनते हैं, वैद्यकशास्त्र अनुसार। ऐसे ही जब मनुष्य भजन करता है जो कि आत्मिक भोजन कहा जाता है, तो उसका भी ऐसा ही विभाजन हो जाता है।

सात धातु– रस, रक्त, मांस, मेद, हड्डी, मज्जा, वीर्य।

उपधातु– लार, पीप, बाल इत्यादि।

मल– १. थूक, २. पसीना, ३. रोम, ४. नेत्र की गीग, ५. नख, ६. कान की मैल और ७. कैश।

आत्मिक भोजन की सात धातुएं– (१) अन्तःकरण की शुद्धि, (२) वैराग्य, (३) चित्त की एकाग्रता, (४) ईश्वरोपासना (५) दुःखों से दूरी (६) आनन्द की प्राप्ति (७) मुक्ति। ये एक प्रकार के सात धातु हैं। जैसे–यदि शरीर में रस न बने तो रक्त नहीं बन सकता और रक्त न बना तो मांस, हड्डी आदि कुछ नहीं बन सकते।

आत्मिक भोजन के मल

२. जैसे प्रत्येक वस्तु के अन्दर अपना–अपना गुण विशेष है। किसी से हड्डी अधिक बनती है, किसी से चर्बी, किसी से मांस, किसी से रक्त आदि या जैसे किसी एक

वस्तु से अनुपात से कुछ हड्डी, कुछ चर्बी, कुछ मांस बनता है। ऐसे ही प्रभु–भक्ति, श्रद्धा, ईश्वर–विश्वास, अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य आदि से विविध गुण उत्पन्न होते हैं। ऐसे ही आत्मिक भोजन से पहले अन्तःकरण की शुद्धि है, जिनका दर्जा रस का है। यदि अन्तःकरण की शुद्धि न हो तो वैराग्य (रक्त) नहीं होता। और वैराग्य न होने से अन्तःकरण की स्थिति कैसे हो सकती है ? धातु तो शरीर के अन्दर रहते हैं और शरीर को बनाने, उन्नत करनेवाले होते हैं। ऐसे ही आत्मिक भोजन के सात–धातु भी आत्मा के साथ रहते हैं। १. अन्तःकरण की शुद्धि, २. वैराग्य, ३. चित्त की एकाग्रता, ४. उपासना, ५. दुःखों से दूरी, ६. आनन्द और ७. मुक्ति और ये आत्मा को ही उन्नत करनेवाले होते हैं, और मल को बाहर फेंकने में समर्थ होते हैं। जो इन धातुओं से स्वतः बनते हैं। आत्मिक भोजन के मल १. धन, २. पुत्र, ३. मित्र, ४. स्त्री, ५. शरीर, ६. यश–मान और ७. शोभा। उपधातु—१. नीरोगता, २. सौंदर्य, ३. धैर्य, ४. बुद्धि, ५. सरलता, ६. नम्रता और ७. उदारता।

१८–४–३६ ४ बजे प्रातः

भक्त ब्रह्मज्ञानी के अपमान का फल

जो मनुष्य किसी भक्त–ब्रह्मज्ञानी का अपयश करता है, अपमान करता है उसकी वह शक्ति क्षीण (नष्ट) होने

लगती है जिस पर उसको अभिमान होता है। अपने धनबल का अभिमान होगा तो धन, मान–प्रतिष्ठा का अभिमान होगा तो मान–प्रतिष्ठा, विद्या–बुद्धि एवं जिस गुण का अभिमान होगा, और उस गुण के अभिमान में दूसरे का अपमान करेगा, वही गुण उसका घटेगा।

१६–४–३६ बुधवार ३।। बजे
७ वैशाख–अमावस व्रत सायं

सुख-शान्ति का स्थान

सुख तो मिलता दूसरों को प्रसन्न करने से और वह भी या तो अपना व्यवहार अच्छा हो या दूसरे की दया हो। बच्चे को अपने आप सुख कभी नहीं मिल सकता, माता–पिता की दया से मिलता है। शिष्य अपने गुरु से, गृहस्थी अपने गृहस्थ–स्त्री पुरुष से, और पुरुष स्त्री से, और साधारणतः सब लोग एक दूसरे के अच्छे व्यवहार से सुख पाते हैं। सुख अकेले को नहीं, अकेलेपन से नहीं मिल सकता। एवं शान्ति मिलती है–एकांत से। दूसरों के संसर्ग से शान्ति नहीं मिला करती। इसलिए शांति का स्थान एकांत है। संसार में विषयों का राज्य है और एकांत में विषयों से पृथक्ता। राग–द्वेष से पृथक्ता का नाम एकान्त है। जंगल में कुटिया या पर्वत एकांत स्थान हैं। वे बाहर का नमूना है और राग–द्वेष विषयों से

वास्तविक 'पृथक्ता' ही मन का एकांत स्थान है। आत्मा जब मन के एकांत स्थान में आ ठहरती है तो शांति ही शांति पाती है। जिसका मन एकांत हो जाए, वह चाहे नगर में भी रहे तो भी शांत रहेगा। परन्तु जंगल, कुटिया, पर्वत आदि के एकांत स्थान में प्रकृति बड़ी सहायता करती है। क्योंकि वे स्थान प्रकृति स्वयं बनाती है और नगर मनुष्यों के विचारों और मस्तिष्कों के बने हुए हैं।

२२–४–३६ शनिवार ८।। बजे प्रातः
१० बैशाख–तृतीया

प्रशंसा का उद्देश्य

१) जब कोई किसी की प्रशंसा करता है–तो उसके दो कारण हो सकते हैं–

क) या तो वस्तुतः उसके गुण हठात् दूसरे के मुख से प्रशंसा करा रहे होते हैं–वह परमातमा की प्रसन्नता होती है–और परमात्मा स्वयं कराते हैं।

ख) किसी अपने अभिप्राय की सिद्धि के लिए चाटुकारिताभरी प्रशंसा होती है–वह मनुष्य स्वयं करता है। यह बनावटी और क्षणिक होती है। एक दिन दोनों के लिए धोखा (प्रवंचना) साबित (प्रमाणित) होती है। यदि कोई अन्य अभिप्राय न भी हो तो भी यह भाव अवश्य होगा कि मैं उसकी प्रशंसा करूं–तो वह मेरी भी बड़ाई

करेगा। यदि मेरी प्रशंसा न करेगा–तो मेरी बुराई भी प्रकट न करेगा।

२) प्रशंसनीय कर्म–(क) वे कौन से कर्म हैं–जो प्रभु–प्रिय नहीं, पर लोक–प्रिय हैं ?

३) अपनी स्वार्थ–सिद्धि या यश के लिए दूसरों की सेवा–सहायता करना लोगों को भी तो प्रिय है क्योंकि उनके काम संवरते हैं। परन्तु प्रभु को प्रिय नहीं।

प्र०– वे कौनसे कर्म हैं जो प्रभु को प्रिय हैं–पर लोकप्रिय नहीं।

उ०– एकान्तवास।

प्र०– वे क़ौनसे कर्म हैं जो प्रभु और लोक दोनों को प्रिय हैं ?

उ०– निष्काम सेवा।

प्र०– कौन लोग कटु वचन बोलनेवाले होते हैं ?

उ०– जिनकी प्रकृति पित्त (बहुत गर्म मिजाज) है। क्योंकि जिनको पित्त अधिक हो जाता है–उनकी वाणी कड़वी लगती है। जो वस्तु खायें वह कड़वी लगती है, मीठा भी खायें तो भी कड़वा प्रतीत होता है। ऐसे गर्म लोग जब मीठा भी बोलें तब भी कड़वा प्रतीत होता है।

प्रश्न– किन लोगों के वचन फीके लगते हैं ?

उत्तर– जिनकी प्रकृति वायु (वात) हो। बहुत शीघ्रकारी, पेट के हल्के हों। क्योंकि जिनको वायु वेग करती है उनकी जीभ का स्वाद फीका ही होता है। जो वस्तु खायें, फीकी लगती है। ऐसे ही इस प्रकृतिवाले मीठा भी बोलें–तब भी फीका ही लगता है।

४. मायाजाल–स्त्रियों में मोह, पुरुषों में लोभ की मात्रा अधिक होती है–इसलिए मोह का साथी काम और लोभ का साथी क्रोध बना रहता है। अहंकार तो सर्वव्यापी हुआ।

२३–४७–३६ रविवार ६–२० प्रातः
११ बैशाख

सुरक्षा पथ्य सेवन में (सलामती परहेज में है)

जैसे बीमारी के बाद मनुष्य स्वस्थता पकड़ता है, तो उसे अधिक सावधानी की आवश्यकता होती है। ऐसे ही जब दोषी मनुष्य सुधरता है तो उसे भी अधिक सावधानी की आवश्यकता रहती है। बीमारी से उठा मनुष्य आदि सावधानी न करे तो फिर ऐसा बीमार होता है कि स्वस्थ होना कठिन हो जाता है। नया सुधरा भी यदि सावधान न रहे तो फिर गिरने पर उसके उठने में लज्जा ही काफी बाधक रहेगी।

२४–४–३६ सोमवार ७।। बजे प्रातः
१२ बैशाख–पंचमी

जाति के सोने का कारण

जो व्यक्ति रात को देर तक जागता है और देर से सोता है, वह फिर शीघ्र नहीं जाग सकता। यदि उसे जगा भी दिया जाये तो वह जो काम करेगा उसमें ही उसे नींद आती रहेगी। यह एक प्राकृतिक नियम है। ठीक इसी प्रकार जो जाति बहुत काल जागकर करोड़ों वर्ष तक जाग–जाग सोई हो, वह अब जगाने पर कैसे जाग सकती है ? हमारी जाति को जो जगाता भी है, फिर वह बेचारी ऊंघ लेने और सोने लग जाती है। इसे सब सुनाया, पढ़ाया और दिखाया भूल जाता है। इसी कारण हमारी हिन्दू जाति अभी संभल नहीं रही।

२५–४–३६ मंगलवार ३ बजे प्रातः
१३ वैशाख, षष्ठी शुक्ला

भक्त और बच्चे की जाति

पिछली रात तीन चार बजे मां को नन्हा गोद का बच्चा जगाता है कि मां दूध पिलावे। परन्तु भक्त को उसका प्यारा प्रियतम भगवान् पिछली रात ३–४ बजे स्वयं ही जगाता है। जिससे कि भक्त अपने प्रभु का अमृत रस पान करे। जैसे कभी–कभी बच्चे समय से

पहले भी भूखा होने के कारण एक–दो बजे जगा देते हैं, चिल्लाकर मां को जगा देते हैं। ऐसे ही कभी भगवान् अपने भक्त को एक–दो बजे जगा देते हैं, उठा देते हैं। विचित्र लीला भगवान् की है। बच्चा अपनी भूख मां को जतलाता है, परन्तु भगवान् अपने भक्त की भूख को स्वयं जानता है। बच्चा तो कई बार जागता है पर मां की प्रेमभरी थपकी से फिर–फिर सो जाता है। परन्तु भक्त को जब भगवान् जगाता है, तब अपनी प्रेमभरी थपकी से आनन्द विभोर (अतिशय मग्न) कर देता है। बच्चा दूध से भूख हटाता है और थपकी से विश्राम पाता है। भक्त भक्ति से तृप्त और आशीर्वाद से शांत होता है–बच्चे को तो मां लोरी देती है जब वह बहुत रोता चिल्लाता है। परन्तु इधर भक्त भगवान् को लोरी सुनाता है, उसके गुणों के गीत गाता है जब प्रभु उसे रिझाता है। मां तो अपनी जान छुड़ाने के लिए भी बच्चे को थपकती और लोरी सुनाती है परन्तु भक्त अपने जागने के लिए लोरी सुनाता है।

२६–४–३६ बुधवार ७ बजे प्रातः
१४ वैशाख, सप्तमी

अनधिकारी याजक

कृपण और उपेक्षावृत्ति इन दो व्यक्तियों को यज्ञ कराने (यजमान बनाने) का अधिकार नहीं। यज्ञ करानेवाले

(पुराहित) को क्लेश होने से दोनों के लिए हानिकर है, हितकर नहीं।

२७–४–३६ बृहस्पतिवार ५। बजे
२५ वैशाख–अष्टमी

किसी भी कर्म को तुच्छ (हेय) मत समझो

जैसे प्रत्येक बीज के बोने में तो देर थोड़ी लगती है, परन्तु उसके फल को काटने और संग्रह करने में बहुत देर लगती है। आम की गुठली बोने में केवल कुछ मिनट लगेंगे, तो उसका फल तोड़ने, संग्रह करने में बहुत काल लगता है। ऐसे ही जो कर्म किया जाता है, यह बीज बोने के समान है। उसका फल कई गुना होकर मिलता है। इसलिए पर्याप्तकाल फल के प्रभाव में मनुष्य रहता है। इसलिए कभी कर्म को तुछ न समझा जाना चाहिए। एक बवासीर की बीमारी हो जाए तो बहुत काल पीछा नहीं छोड़ती। गुर्दे का दर्द पड़ जाए, पीलिया हो जाये, ज्वर हो जाये–एकदम नहीं दूर होते हैं। काफी समय पीछे लगे रहते–फल भुगवाते हैं।

२८–४–३६ शुक्रवार ३–४५ बजे सायं
१६ वैशाख–नवमी–दशमी

विनोदशील व्यक्तियों का प्रभाव

जिन लोगों की बोलचाल विनोदभरी होती है–वे बड़े

गम्भीर और विवेकी होते हैं। उनकी भीतरी वास्तविकता जानना बहुत ही कठिन है। यह गहरा काम होता है। उनकी पवित्रता और अपवित्रता का माप करना भी कठिन होता है। विनोदभरी वार्तालाप करनेवालों का मस्तिष्क भी प्रभु ने कवियों की भान्ति बनाया होता है। यह उनके पुण्यों का फल है। यदि ऐसे व्यक्ति पवित्र और सदाचारी हों—तो उनका विनोद—वचन आत्मिक आनन्द—सरूरे—राहत पैदा करता है। दूसरों को सच्चा श्रद्धावान् बना देता है। यदि अपवित्र भाववाले हों—तो वे कठोर—स्वार्थी और मक्कार होते हैं। ठीक अवसर पर उनसे धोखे (प्रवंचना) की संभावना होती है। झूठा दिलासा देनेवाले होते हैं। और साधारण मनुष्य तो उनके वशवर्ती रहते हैं, प्रतियोगिता नहीं कर सकते। और बुद्धिमान् व्यक्ति भी कुछ काल के लिए अपितु समय—समय पर उनसे प्रभावित होकर धोखा उठाते हैं।

३०—४—३६ रविवार ४ बजे
१८ वैशाख द्वादशी

तीन एषणाएं आवश्यक और वर्जित भी

ब्रह्मचर्य—आश्रम में कोई भी एषणा नहीं होती। गृहस्थाश्रम में सब प्रकार की एषणा—पुत्रैषणा, वित्तैषणा और लोकैषणा आवश्यक बन जाती है। नहीं तो गृहस्थी

कोई भी कार्य संसार का न कर सके—एवं किसी का उपकार और सेवा भी न कर सके यदि उसे वित्तैषणा न हो। कोई भी यश का काम न कर पावे—यदि लोकैषणा न हो। और यदि ब्रह्मचारी कोई एषणा पैदा कर लेवे—तो ब्रह्मचर्य तुरन्त भंग हो जाता है। इसलिए उसे तो प्रभु ने कोई एषणा नहीं दी। वानप्रस्थी पुत्र और वित्तएषणाओं का त्याग करता है परन्तु लोकैषणा रह जाती है और संन्यास—आश्रम में उसका भी त्याग हो जाता है। यदि इन आश्रमों में कोई एषणा रह जाए—तो गृहस्थी और विरक्त में अन्तर नहीं रहता।

१—५—३६ सोमवार ८—१५
१६ वैशाख—त्रयोदशी

वाणी का बल

जिस मनुष्य की वाणी में बल है—जो बल से बोलता है—उसके सामने पाप और पापी दोनों डरते हैं। मनुष्य को प्रत्येक शुभ कार्य में बलपूर्वक काम लेना चाहिए। प्रार्थना, संध्या, यज्ञ, मन्त्रपाठ, स्तुति आदि में बलपूर्वक उच्चारण होना चाहिए जिसे सब सुन सकें। बल में ही एकाग्रता है। बल से बोलनेवाला अपनी आवाज में एकाग्र होकर रस लेता—तथा दूसरों को भी इससे रस मिलता है।

२–५–३६ मंगलवार १–१५ बजे प्रातः
वैशाख–चौदस

मनुष्य की भूल का परिणाम

जब साधारण मनुष्य अपने किसी मित्र, बुजुर्ग, पूजनीय पुरुष की अपेक्षा अपने में भूल से अधिक गुण मानने लग जाता है तो उसके मन में धीरे–धीरे यह विचार कभी–कभी अपनी और उसकी तुलना करने का आता रहता है और यह विचार संस्कार का रूप बन जाता है। और यही पता लगता है कि वह संस्कार समय पर कभी–कभी संकेत (चिह्नमात्र) कभी स्पष्टतया और कभी बनावट से प्रकट हो उठता है और फिर वही संस्कार अभिमान और क्रोध का रूप बदलकर निरादर करा देने का कारण बन जाता है। साधारण मनुष्य प्रकट को ही देखनेवाला है–वह उसी अपने अधिक गुण का अनुमान गलत लगाता है। स्थूल–वृत्ति के लोग अपनी स्थूल–क्रिया को दूसरे की सूक्ष्म–क्रिया से जो प्रकटतया बहुत ही थोड़ी दीखती है–अधिक समझ लेते हैं। सुनार की ठक्–ठक् और लोहार की एक सट् के अनुसार वस्तुतः जानना चाहिए।

३–५–३६ बुधवार ३।। बजे प्रातः
२१ बैशाख पूर्णमासी

भगवान् से मांगने में भूल न करो

साधारणमानव बड़ी भूल करता है। जो वस्तु उसे

बिना मांगे अपने आप मिल जानी होती है—उसको तो मांगता रहता है—पर जो बिना मांगे मिलनी ही नहीं—उसे मांगता ही नहीं। मनुष्य मांगता है—यश और बल। दान करता है तो चाहता है मेरा यश हो। पर वह कितनी भूल करता है—दान करनेवाले का तो बिना उसकी इच्छा के तुरन्त ही यश होने लग जाता है। यह तो एक प्रकार का परोपकार, सेवा, दान आदि का मल है। जैसे मनुष्य अन्न खाता है तो उससे अपने आप मल बनता है। मनुष्य को कोई इच्छा करने की आवश्यकता नहीं। परोपकारी और दानी का यश तो मल के समान अपने आप बनता है। और जैसे भोजन खाने से बल भी अपने आप आ जाता है ऐसे ही उपकार करने से बल भी स्वतः बढ़ता है। मनुष्य मांगता है धन। यद्यपि यह उसके पूर्व—कर्मों का फल है अपने आप ही मिल जाना है।

मनुष्य को मांगना चाहिए—नामदान, भक्तिदान, जनसेवा, परोपकार, दान—पुण्य, सुविचार, सद्बुद्धि। जो दान—परोपकार मांगेगा उसे प्रभु धन और बल यदि देंगे तो वह दान और परोपकार कर सकेगा अन्यथा उसकी प्रार्थना क्या हुई ?

२. भोली-भाली और चतुर दुनियां

एक ओर तो दुनियां बड़ी भोली—भाली है, दूसरी

तरफ बड़ी चतुर है। बड़े–बड़े पढ़े–लिखे और धनी पुरुष माताएं–देवियां साधु–महात्माओं के पास आकर पूछते हैं–महाराज हमारा मन नहीं लगता। युक्ति बतलाओ। वे केवल भेष देखकर यह विश्वास करते हैं कि इनका मन तो बस टिका हुआ ही है। कितना भोलापन है ? परन्तु वे ही अपनी जिह्वा और बुद्धि से दूसरों को अपना वशवर्ती बना लेते हैं और अपनी प्रशंसा कराते हैं। जिसने विषय–वासनाओं पर वश नहीं पाया वह कैसे स्थिर मन हो सकता है ?

५–५५ बजे प्रातः

स्त्री अन्न-धन की शोधक है

पुरुष जो घर में अन्न लाता है उसे स्त्री ही शुद्ध करती है जैसे स्त्री अन्न को शुद्ध करती है ऐसे ही पति की धन–कमाई को भी वही शुद्ध–पवित्र करती है। पति की कमाई को अन्न के द्वारा शुद्ध भावनाओं से पकाकर आतिथ्य (साधु–अभ्यागत–दीन–दुःखी की सेवा करने से) शुद्ध कर देती है। स्त्री शोधक है, पवित्र करनेवाली है। वह स्त्री, स्त्री नहीं जो अपने पति की कमाई को शुद्ध नहीं कर सकती।

२ वासना की उत्पत्ति और क्षय का कारण 'मोह'

वासना की उत्पत्ति मोह से होती है। मोह का क्षय हो

जावे तो वासना ही न रहे।

४–५–३६ बृहस्पतिवार ६–४५ बजे प्रातः
२२ वैशाख–प्रतिपदा–कृष्णपक्ष

गृहस्थाश्रम ही स्वर्ग और नरक है

संसार में समय–यापक अधिक और समय–पारखी कोई बिरला होता है। समय श्वासों का बना हुआ है। एक–एक श्वास का मूल्य किसी के पास चुकाने के लिए नहीं। जिसने श्वास को समझा उसी ने प्रभु और शुभ कर्मों में अपना सारा जीवन बिताया। गृहस्थी आजकल समय–यापन कर रहे हैं। इसलिए उनका सुधार नहीं होता और वे किसी का सुधार नहीं कर सकते। गृहस्थी स्त्री और पुरुष तो एक आदर्श हैं। ब्रह्मचारी, वानप्रस्थी और संन्यासी को तो देर भी लग जाय पर गृहस्थी अपने सम्बन्ध–धर्म को समझ लेवे तो शीघ्र प्रभुसत्ता का भान कर लेवे। स्त्री अपने पुत्र से बड़ा प्रेम करती है और उसे नयनों का तारा और हृदय का दुलारा कहती है। पुरुष और स्त्री अपने गुरु को भी पूज्यदेव और बुद्धि का स्वामी कह देंगे परन्तु प्राण का दर्जा तो स्त्री केवल अपने पतिदेव को देती है, कहती है–'मेरे प्राण–प्यारे ! मेरे प्राणनाथ !' संसार में सबसे प्यारी वस्तु एक प्राण ही है। और प्राण नाम प्रभु का है। यदि स्त्री सचमुच ऐसा समझ

लेवे कि पति मेरा प्रभु और प्राण है तो भूलकर भी उसका निरादर और तिरस्कार न करे। उसे कभी अप्रसन्न–रुष्ट न करे। इसलिए विवाह के समय सबसे पहले यही प्रार्थना करती है–'**प्र मे पतियानः पन्था कल्पतां शिवा अरिष्टा पतिलोकं गमेयम्**'। हे प्रभो ! मेरा वही मार्ग हो जो मेरे पतिदेव का है। किसलिए ? शिवा, वह मार्ग कल्याणकारी है। अथवा कल्याण के लिए (सुख पाती हुई) जिससे अरिष्टा (निर्विघ्न) मैं पतिलोक को (पतियों के पति परमदेव परमात्मा के लोक को) प्राप्त कर सकूं। वह स्त्री कभी मुक्त नहीं हो सकती जो पति को पति नहीं समझती। जो त्याग और प्रेम बिना किसी दिखावे के स्त्री–पुरुष में होता है वह और किसी में नहीं हो सकता। और मुक्ति के लिए त्याग और प्रेम बिना ज्ञान के है। ज्ञानरहित त्याग और प्रेमरहित त्याग गृहस्थाश्रम को नरक और जंजाल बना रहा है।

६ बजे रात्रि

गुप्त कर्म–गुप्त फल

परमात्मा की लीला अपार है। कई व्यक्तियों को सब कुछ प्राप्त है। शरीर भी सुन्दर है। परन्तु किसी एक अंग के अधिक बना देने से–उदाहरणतः छियांगली, रसोली, तिल, दांतों का बाहर होना आदि। वे अपने लिए–एक

कुरूपता समझते हैं। यद्यपि उससे उनको पीड़ा, कष्ट, दुःख नहीं होता। परन्तु उन्हें एक दोष प्रतीत होता है। यह फल है किसी ऐसे गुप्त कर्म का जो शुभ कर्म करने हुए भावना में अन्तर आ जावे।

५–५–३६ शुक्रवार ४।। बजे
२३–वैशाख–द्वितीया प्रातः

स्त्रीधन क्या है ?

स्त्रीधन–सुवर्ण है। इसके अर्थ हैं–सोना, भौतिक रूप से। और आध्यात्मिक रूप से–सु सुन्दर श्रेष्ठपति वरण–प्राप्त होना। सज्जन धर्मात्मा श्रेष्ठपति की प्राप्ति स्त्रीधन है। तीसरा अर्थ है–स्व अपना वर्ण–रंग–अपना रंग रूप ही जानना–पति को। दो शरीरों में एक प्राण हो जावें।

६–५–३६ शनिवार ३–४० बजे
२४ बैशाख कृष्ण तृतीया प्रातः

कच्चेपन से पतन

१. स्त्रियां कान की कच्ची हैं–और पुरुष वाणी के कच्चे हैं, नवयुवक आंख के कच्चे हैं–और बच्चे पेट के कच्चे हैं। अर्थात् स्त्री जाति देवी है। बड़ी भोली भाली है, जैसे किसी ने सुना दिया–उसकी हो रहीं। एक आया, उसने कुछ कहा तो वैसा सुनकर उनकी बन गई। दूसरा

आया तो उसने सुनाया उसकी बन गई। पुरुष में यह रोग है वचन पर दृढ़ नहीं रहता। कभी कुछ कहा—कभी कुछ। नवयुवक ने एक सुन्दर रूप को आंख से देखा—उस पर मोहित होगया। कल दूसरी देखी उस पर मोहित होगया। बच्चे बात टिका नहीं सकते। पर जब कोई मनुष्य पेट का भी कच्चा हो, आंख का, वाणी का और कान का भी कच्चा हो, उसका ठिकाना नहीं। सिवाय सब जगह मार पड़ने के और क्या पाएगा ? ये सब ज्ञानेन्द्रियां हैं, ज्ञान के कच्चे रह जाने से मनुष्य अविश्वसनीय, निश्चयहीन और सदाचार—रहित हो जाता है। और जो लोग कलम के कच्चे हैं इससे सदा धन का नाश करते हैं। उधार दिया—लिख न सका। लिखा तो पढ़ा न गया।

सवाणी

२. "सवाणी"—स्त्री को पंजाबी में सवाणी इसलिए कहते हैं क्योंकि अयन घर को कहते हैं, और सव (स्वा)—मालिका को। जो घर की मालकिन हो—उसे सावणी कहते हैं।

अमित्र

३— "अमित्र" वह मनुष्य सबसे बड़ा अमित्र है जो किसी की कमाई को सफल करने का चकमा देकर उसे निष्फल कर दे।

१३–५–३६ मंगलवार ५ बजे
३१ वैशाख–दशमी प्रातः

संग-कुसंग का प्रभाव

जो पानी नल का या कुएं का घड़े में भर रखा जाता है–गर्मी की ऋतु में वह पहले गर्म होता है फिर ठण्डा हो जाता है। परन्तु जिस पानी में बर्फ डाल दी जावे–वह उस समय तो बहुत ठण्डा हो जाता है बाद में देर होने पर वह पानी गर्म हो जाता है। यहां तक कि वह फिर स्वयं ठण्डा होता ही नहीं। ऐसे ही मनुष्यों का हाल है जो साधारण आदमी है–वह जब सत्संग पूजा का संगी बनता है, तब अच्छा बन जाता है–प्रिय बन जाता है। और जो सत्संगी कुसंग में आ जावे–फिर उसका अच्छा होना कठिन हो जाता है।

१३–५–३६ सोमवारं ५–३५ बजे
२ ज्येष्ठ द्वादशी प्रातः

आध्यात्मिक और सामाजिक कर्म

"आध्यात्मिक और सामाजिक कर्म दो प्रकार की भलाई के, अथवा भले काम करने होते हैं। एक तो वे हैं जो मनुष्य करता तो अपने लिए है पर उससे सर्व–साधारण को लाभ होता है। दूसरे वे हैं जो मनुष्य दूसरों की भलाई के लिए करता है उसे स्वयं लाभ हो या न हो। ऐसे

भलाई के काम सीमित होते हैं और पहली प्रकार के असीमित। प्रसन्नता और शान्ति दोनों में होती है। पहले में शान्ति शाश्वत तक ले जानेवाली होती है। दूसरे में कुछ काल तक की। पहले प्रकार के शुभकार्य करनेवालों पर परमात्मा की और उसकी प्यारी आत्माओं की दया होती है। दूसरी प्रकारवाले कभी अपने संस्कारों से, कभी वायुमण्डल के प्रभाव से प्रभावित होकर मनुष्य शुभ काम करते हैं। प्रेम और अहिंसा, तप, सत्य, भक्ति ये शुभ कार्य मनुष्य अपने ही लिए करता है जिनसे सर्वसाधारण को लाभ प्राप्त हो जाता है और यह स्थायी शाश्वत शान्ति को दिलानेवाली है और दूसरे उपकार के काम, दान, यज्ञ, सेवा, दीन–दुःखी अतिथि सेवा आदि सब शुभकार्य दूसरों की भलाई के लिए हैं और दूसरों की भलाई के भाव से ही किये जाते हैं।

१७–५–३६ बुधवार ६ बजे
४ ज्येष्ठ त्रयोदशी प्रातः

छोटेपन का अभिमान मत कर

परमात्मा तो महान् है परन्तु उसका मार्ग (प्रवेश द्वार) बड़ा छोटा और लघु है। इस मार्ग से वही प्रवेश कर सकता है, जो अपने आप को छोटा जानता है। जैसे तंग और छोटे मार्ग से बड़ा और भारी आदमी प्रविष्ट नहीं हो

सकता। बच्चा जो स्वयं छोटा है पतला और जिसके पांव भी छोटे हैं—सरलता से प्रविष्ट हो सकता है। ऐसे ही वह भक्त मनुष्य जो स्वयं को छोटा बना लेता है—उससे यह मार्ग सरलता से पार किया जाता है। छोटा बन जाने या स्वयं को छोटा मानने में जो अभिमान होता है वह स्वयं नष्ट हो जाता है। जब मान—अपमान का विचार न रहा तो हानि—लाभ भी न रहा। एक धनी जब हार जाए, फेल हो जाए, तो वह छोटा बन जाने पर भी मान का त्याग नहीं करता। वह इस कारण शोक नहीं करता कि उसके पास धन न रहा। अपितु अधिक शोक उसे इसलिए होता है कि लोग उसे दृष्टि से गिरा देंगे। उसे सभी धनी लोग छोटा आदमी समझने लग जायेंगे। यही मान—अपमान की चिन्ता उसे दुःखी बनाए रखती है। जितने भी प्रभु भक्त और इस मार्ग पर चलनेवाले हुए हैं—सबने अपने आपको छोटा कहा है।

२. लघु बन के देख

परमात्मा की समीपता उसकी आराधना और प्रार्थना है। बड़े से बड़ा धनवान्, बलवान्, विद्वान् भी जब प्रार्थना करता है तो (चाहे दिल से न करे) मुख से तो उसके यही निकलता है—कि "प्रभु ! आप महान् हो। मैं निर्धन, अनपढ़, निराश्रय, निर्बल ही हूं।" यह चिह्न है कि मनुष्य

दिल से लघु बनकर पहुंच सकता है। जब तक अपने आपको किसी भी प्रकार से बड़ा माने हुए है–इस मार्ग से चल (गुजर) नहीं सकता। एक पग भी आगे नहीं बढ़ सकता।

३. बड़ापन प्रभु मार्ग से दूर करता है

मनुष्य का शरीर प्रकृति की तुलना में छोटा, इतना छोटा है कि जैसे बाल का भी कई हजारवां भाग और आत्मा परमात्मा के 'सामने कुछ भी न' के समान है। फिर बड़ाई और इतराई किस विचार से करता है ? जो बड़ाई करता है, बड़ा बनकर इतराता है, प्रभु मार्ग से दूर पड़ जाता है।

१–५–३६ बृहस्पतिवार ७।। बजे
५ ज्येष्ठ चतुर्दशी प्रातः

प्रत्येक मनुष्य दोनों लोकों में अपने जीवन-कर्म अनुसार स्वागत पाता है

मनुष्य मान का भूखा है। वह इस भूख को मिटाने के लिए क्या–क्या नहीं करता है ? लाहौर–कराची मेल जब प्रस्थान करती है तो यात्री लाहौर (या अन्य किसी स्टेशन) से चढ़ता है तो उसके वस्त्र उज्ज्वल और मुख साफ होता है। परन्तु रास्ते की धूलि, मिट्टी, तेल, इंजन के

कोयले, ऊपर से सूर्य की गर्मी से पसीना जो यात्रियों को आता है उनके कारण कराची पहुंचने से पहले ही यात्री एक नमूना बन जाता है। शीशे में अपनी परछाई देखता है तो अपनी इस दशा पर व्याकुल हो जाता है। किसी को मुख दिखाने योग्य नहीं पाता। एक भयानक बहशियों जैसी शकल हो जाती है। एक दो स्टेशन पहले (कराची से) लोग यथाशक्ति अपनी धूल–मिट्टी झाड़ते हैं और पानी से हाथ मुख भी धोते हैं कि हम किसी तरह पूर्व की तरह साफ और उज्ज्वल दिखाई दें। पर ऐसी सफलता सबको कहां ? कई जैन्टिल–मैन जिन्हें अपनी पोजीशन का बड़ा मान होता है वे साबुन से अपने मुख–सिर को साफ करते हैं ओर मैले कपड़े उतारकर नए कपड़े (ट्रंक से निकालकर) पहनते हैं तथा हर समय शीशा देखते रहते हैं कि पहले जैसे बन गए कि नहीं। और जिन बेचारों के पास दूसरे कपड़े न हों और साबुन भी न होवे तो कार्टून ही बने दिखाई देते हैं।

प्रत्येक मनुष्य अपने श्वासों की मेल ट्रेन में आरूढ़ है और बड़ी तेजी के साथ श्वास दौड़ रहे हैं। अपने जीवन की धूलि मिट्टी रेत से बुरे हाल और परेशान हो रहा है और अन्त समय जब मृत्यु का स्टेशन निकट आनेवाला होता है। उससे पूर्व ही चिन्ता लग जाती है कि कैसे

लोग हमको पसन्द करेंगे। बहुत–लोग दान–पुण्य से अपनी धूलि झाड़ना चाहते हैं–जिन्हें जैसी सामर्थ्य होती है, और जिनके शुभ कर्म के वस्त्र और भी रखे हैं–वे तो झट मैले उतारकर उन साफ कपड़ों को पहन लेते हैं–और उज्ज्वलमुख बनकर अन्तिम स्टेशन पर भी उत्तम दिखाई देते हैं। परन्तु जिन बेचारों के पास कुछ भी नहीं, वे मैले के मैले उतरते हैं और बहुत ही गन्दे नज़र आते हैं। आगामी जन्म में भी किसी को नहीं भाते।

२. रेल से उतरनेवाले यात्रियों की कई किस्में (भेद) होती हैं–एक तो वे हैं–जिनके स्वागत के लिए बड़े–बड़े श्रेष्ठ व्यक्ति आते हैं, और मोटरें, फूलों के हार और कई अभिनन्दन–पत्र प्रस्तुत करने को ले आते हैं। और उनके विश्राम–स्थल भी पहले से सजे हुए होते हैं। ये तो होते हैं बुलाये हुए महान् व्यक्ति। जिनके मिट्टी के शरीर उनके उत्तम गुण और शुभ आचरण के कारण उच्च सत्कार से स्वागत किये जाते हैं। दूसरे वे हैं–जिनके स्वागत के लिए मोटरे भी आई हैं और आदमी भी। परन्तु वह मोटर और वे आदमी उसी सज्जन के अपने ही हैं। उनके तार–चिट्ठी देने पर कि अमुक समय आऊंगा। वे उसकी ही वस्तुएं लाते हैं। ये वे सज्जन होते हैं–जो दानी होते हैं। अन्त समय उनकी अपनी दी हुई वस्तुएं

उनका स्वागत करती हैं। तीसरे वे हैं–जो असंख्य हैं–जिनके स्वागत के लिए न कोई आता है– न कोई गाड़ी मोटर आती है। वे बेचारे अपना सामान आप ही सिर पर उठाकर नगर में यात्रियों की भान्ति धर्मशालाओं, किराये के यात्री–गृहों में जा बसेरा करते हैं और आजीविका (भोग) की खोज के लिए आते हैं। ये वे लोग हैं जिन्होंने न दान–पुण्य किया है–न शुभ आचरण बनाये हैं। न किसी को पहचाना कि यह पूज्य है–इसकी सेवा करूं। या यह दीन–दुःखी है–इसकी सहायता करूं। अब इनको भी कोई अकेले को नहीं पूछता, न ही पहचानता।

१६–३–३६ शुक्रवार १२–३०
६ ज्येष्ठ अमावस व्रत मध्याह्न

प्रभु-प्रसन्नता और लोक-प्रसन्नता

१–कन्या तो धरोहर (अमानत) है–पुत्र स्वत्व (मलकीयत)। बुद्धिमान् लोग धरोहर की अधिक रक्षा करते हैं–और बुद्धिहीन स्वत्व की। कन्या की तो पराया माल समझकर उसके पालन–पोषण से और शिक्षण–प्रशिक्षण से उपराम (लापरवाह) रहते हैं और पुत्रों की संभाल पूरी लेते हैं। जो धरोहर को संभालता है–उसकी रक्षा पूरी–पूरी करता है, उसे प्रभु की आशीर्वाद मिलती है और जो पुत्र को संभालता है उसे धन को बड़ाई मिलती है–जो लोगों

से सम्बन्ध रखती है। तथा जो दोनों कर्त्तव्यों का पालन करता है—उसे प्रभु—प्रसन्नता और लोक—प्रसन्नता दोनों प्राप्त होते हैं।

जल में सौन्दर्य है

२—प्रभु की सृष्टि में प्रत्येक वस्तु का एक दूसरे से भेद है रंग में, गन्ध में, आकार में। परन्तु प्रत्येक वस्तु अपने आप में पूर्ण एकता रखती है। अतः प्रभु की प्रत्येक वस्तु सुहावनी और प्यारी तथा लाभदायक होती है और यदि कोई इन सब विभिन्न वस्तुओं का एक गुलदस्ता बना देवे—तो वह अतीव सुन्दर और सुशोभित बन जाता है यदि इसी नियम के अनुसार मानव समाज काम करे—तो सारी दुनिया सुहावनी लगे।

३०—५—३६ मंगलवार २—२५
२७ ज्येष्ठ द्वादशी मध्याह्नोत्तर

एक इच्छा गिराए और एक इच्छा उठाए

बड़ा बनने की इच्छा मनुष्य को गिरानेवाली है और अच्छा बनने की इच्छा मनुष्य को उन्नत करनेवाली है।

७—६—३६ बुधवार ५—१५
१५ ज्येष्ठ पंचमी

प्रार्थना

वाह प्रभो ! तेरी लीला बड़ी विचित्र है। गुर्दे की पीड़ा

से जो अनुभव कराया—वह तेरी दात है। तेरी कृपा और दया का कहां तक धन्यवाद गाऊं—कि जब—जब भी कोई विशेष शारीरिक कष्ट हुआ, वह तेरी दात, नई दात मिलने का साधन बनता रहा। अब के भी तेरी दया की दात मिल गई। तू धन्य है, धन्य है। संभवतः इसीलिए पूर्वकाल में भक्त दुःख के ग्राहक और इच्छुक बने रहते थे। सुख में तो प्रभु संभवतः कंकरों की दात प्रकृति से दिला देता है—और दुःख में अपनी निज—दात (आध्यात्कि) स्वयं प्रदान करता है। अतएव तेरे भक्त दुःख में कभी नहीं घबराते। उनका मुखमण्डल प्रसन्नता से भरा, अन्दर से उनको सच्ची शान्तिभरे उंल्लास की आशा बंधी रहती है। और वे **'तेरी इच्छा पूर्ण हो'** कहते हैं। तेरी भीतरी व्यवस्था बड़ी विचित्र है—जिसमें किसी की बुद्धि का प्रवेश नहीं, न किसी की बुद्धि काम करती है। शरीर निर्जीव नाड़ियां, मांस के बल—हीन तन्तु—कितना बल रखते हैं ? जब तेरी आज्ञा पाते हैं—ऊपर की वस्तु ऊपर रह जाती है, नीचे की नीचे। कोई औषधि, कोई साधन, युक्ति और ढंग, गिलास लगने और गोली खाने, इंजैक्शन, भाप, विरेचन आदि सब व्यर्थ रह जाते हैं। न कै (वमन) आवे, न विष्ठा। ज्यों औषधि लो—पीड़ा बढ़ती है। और जब तू कृपा करे, तेरी आज्ञा हो जाए—सब जीवनहीन मांसपेशियां,

नसें ढीली हो जावें—और रास्ता दे देती हैं। ऐसे रोगों में ही मनुष्य अपने आपको प्रकट करता है कि वह क्या है? साधक की तो मुकाबले की परीक्षा सी होती है। अज्ञानी और अविश्वासी रोता है और दुःखी होता है और जिस पर तेरी कृपा होती है—वह अपने सिर से बड़ा ऋण चुकता देखता और अधिक तेरी अराधना जप, तप करता है तथा वह केवल तेरे नाम को औषधि मानता और श्रेष्ठ जानता है।

१०—६—३६ शनिवार ६—५०
२८ ज्येष्ठ अष्टमी प्रातः

व्यवहार में धन का स्थान

रोगी के शरीर से जब रक्त निकल जाता है—तो उसकी सब इन्द्रियां शिथिल हो जाती हैं तथा उसका सहयोग नहीं दना चाहती। जीभ फीकी रहती है पानी पिये तो फीका लगता है। कोई वस्तु खाए तो फीकी लगती है। शरीर में रक्त ऐसा है—जैसे व्यवहार में धन। जब व्यापारी का धन निकल जाए—तब उसके सेवक—भृत्य उसका साथ नहीं देते। उसकी वाणी में, बोल में फीकापन आ जाता है। किसी को उसका बोल मधुर—प्यारा नहीं लगता और भक्त में भी यदि जप—तप—सत न रहे—तब उसकी भक्ति में फीकापन आ जाता है। उसकी वाणी में

रस स्वाद और प्रभाव नहीं रहता। वाणी असत्य से मैली प्रतीत होती है—वाणी का बोल (भाषण) फीकारस देता है।

सेवाधर्म

संसार में सबसे ऊंचा—धर्म 'सेवा' है। तन तो शासन से खरीदा जा सकता है—बांधा जा सकता है, अपने वश में किया जा सकता है। और मस्तिष्क—बुद्धि धन से अपने वश में और अधीनता में किया जा सकता है। परन्तु मन या हृदय न शासन से वश में आ सकता है न धन से वश में आता है। यह केवल सेवा से ही खरीदा—बांधा और वश में किया जा सकता है—या अपना बनाया जा सकता है। यह सेवा—भाव बड़े पुण्य कर्मवालों को प्राप्त होता है। बुजुर्गों की सेवा करो—तो आशीर्वाद पाओ, निर्धनों—निर्बलों की सेवा करो—तो यश और नाम पाओ। सेवा जहां ऊंचा धर्म है—वहां सबसे कठिन—काम भी है। कठिनाई को पार करने के लिए—तप और त्याग की आवश्यकता है। तप तो सत्यज्ञान से और त्याग प्रेम से सम्बन्धित है। प्रभो ! अपने अपार कोष से मुझ अपने आश्रित को भी यह दात (सेवा भाव) प्रदान कर।

२१—७—३६ शुक्रवार — ८—१५
८ श्रावण—पंचमी — प्रातः

साधारण मनुष्य और प्रभुभक्त का दिन-रात

साधारण मनुष्य को तो दिन और रात मृत्यु के निकट

ले जा रहे हैं—और प्रभुभक्त को वही दिन—रात प्रभु के समीप कर रहे हैं।

३०—७—३६ रविवार २ बजे
१५ श्रावण चौदस व्रत मध्याह्न

कृपण और उदार के दिल के भावों का प्रवाह

कृपण व्यक्ति धनी, श्रद्धालु और सज्जन होकर भी समय पर सेवा—सहायता के कर्त्तव्य से वंचित रह जाता है। हृदय तो उसका चाहता है कि बड़ी सेवा करे। पर ढंग सोचता रहता है और अवसर खोजता रहता है और इसी में समय खो बैठता है। परन्तु उदार हृदय व्यक्ति निर्धन साधारण—स्थिति का होता हुआ भी समय आने पर बिना सोचे—समझे और अवसर ढूंढे—तुरन्त ही अपनी सेवा प्रस्तुत कर देता है। हृदय के दो मार्ग हैं—एक भाव और दूसरा बहाव (प्रवाह) का। शुभ हृदय, कृपण और उदार में भाव का मार्ग तो बराबर है—पर बहाव (प्रवाह) भिन्न—भिन्न। कृपण का प्रवाह संकुचित (तंग), और उदार का खुला होता है। कृपण बाद में पछताता है—और लज्जित होता है। उदार पहले भी प्रसन्न और पीछे भी प्रसन्न रहता है। इससे निर्धन का धन नहीं घटता—और धनी का धन नहीं बढ़ता। सेव्य के हृदय में निर्धन उदार मान और आदर का पात्र बन जाता है और धनी कृपण मान और आदर नहीं पाता।

१–८–३६ मंगलवार ४–३०
१७ श्रावण–शुक्ला प्रतिपदा प्रातः

वैराग्य और कठोरता में भेद

१. जो ईश्वरभक्त परिवार अथवा संसार के दुःखों की परवाह नहीं करता और जानकर बेपरवाह रहता है–इस विचार से कि उसे मोह नहीं, या वैराग्य हो जाएगा, वह ईश्वरभक्त नहीं बन सकता, उसकी भक्ति सफल नहीं होती। यह वैराग्य नहीं कठोरता है।

२. ईश्वर को रिझाने से पहले उसके (बन्दों) बन्धुओं को रिझाओ–यहां तक कि पशु–पक्षी और हिंसक–प्राणी भी रीझ जाएं। जिससे अपने ही नहीं रीझते–वह प्रभु को कैसे रिझाएगा ?

६–१५ प्रातः

नम्र और अकड़ा

वे सड़कें जिन पर उतराई–चढ़ाई है–और मोटरों के लिए बनाई गई हैं–ऊपर के किनारे से (जो उभरे हुए हैं) उन पर फासला अधिक है और नीचे के किनारे जो ढलवां बने हुए हैं उन पर चलने से मार्ग थोड़ा हो जाता है। ऐसे प्रभु–मार्ग में जो नम्र स्वभाव है, उसके लिए मार्ग कम और अकड़े–स्वभाववालों के लिए फासला अधिक हो जाता है।

६–८–३६ बुधवार ५ बजे
२५ श्रावण–नवमी प्रातः

प्रभु-पुकार के बिना मनुष्य पशु-समान

यह कहावत–कि "मनुष्य का बच्चा जब भी पैदा होता है–रोता आता है। वह रोता है–और लोग हंसते खुश होते हैं।" यह बात सही नहीं। मनुष्य का बच्चा रोता नहीं आता–अपितु पुकारता आता है। रोने का तो चिह्न है–आंखों से अश्रु बहना। परन्तु उस समय नवजात–शिशु को अश्रु नहीं होते। और रोना होता है दुःख में, दर्द में या प्रेम में। परन्तु ये दोनों स्थितियां इसमें नहीं होती। अपितु वह प्रभु को–अपने शब्दों में याद करता है, और पुकार करता है। इधर पशु का बच्चा न पुकारता है–न रोता–चिल्लाता है। इसीलिए जो मनुष्य प्रभु–दरबार में पुकार नहीं करता–वह पशु–समान है।

१७–८–३६ बृहस्पतिवार ७–३०
१ भादों शुक्ल–तीज प्रातः

योगासन की विशेषता

संसार में जितने प्राणी प्रभु ने पैदा किये–चाहे पशु अथवा पक्षी, या वृक्ष, सब आसन कर रहे है मानव–शिशु भी आसन लगाए हुए होता है–मातृगर्भ में। ८४ लाख योनियां कहलाती हैं। ८४ आसन हैं। पशु–पक्षी–वृक्ष

आदि बहुत कम ही रोगी होते हैं। उनका प्राकृतिक आसन रोगों के दूर करने का, लगा हुआ है। मनुष्य भी आसन करता रहे–तो नीरोग रहे। व्यायाम अनेक प्रकार के हैं–कई तमोगुणी, कई रजोगुणी और कई सतोगुणी। कबड्डी आदि भी शरीर को नीरोगी बनाते हैं। परन्तु उनमें जीत–हार और मारने की वृत्ति होती है। वे इसलिए तमोगुणी हैं। फुटबाल, वाली–वाल, टैनिस आदि भी व्यायाम हैं–परन्तु रजोगुणी हैं। वे मनुष्य के मस्तिष्क में रजोगुण पैदा करते हैं। परन्तु योग के आसन–जिनका नाम ही योगासन रखा गया है–वे सतोगुणी हैं और वे प्रभु के मिलाप में सहयोग देते हैं। अतः आसन सर्वोत्तम व्यायाम हैं।

२०–८७३६ रविवार ७ बजे
४ भादों–षष्ठ प्रातः

गर्भासन

मानव–शिशु मातृगर्भ में जब पुकार करता रहता है–तो गर्भासन में अपने कानों को अपने हाथों से पकड़े हुए होता है। वह कठोर प्रायश्चित्त करता है। खेद है कि मनुष्य बड़ा होकर भूल जाता है। कान पकड़ना संसार में शिक्षा क़ा और दण्ड अथवा पापों के प्रायश्चित्त का चिह्न है।

२१–८–३६ सोमवार ७ बजे
५ भादों सप्तमी प्रातः

पूर्ण कर्म ही पूरे दोष को दबाता है

परमात्मा ने मनुष्य के कानों की दूरी पूर्व और पश्चिम की बनाई है। आंख, दोनों नाक, मुख तो एक हाथ से बन्द हो सकते हैं–परन्तु दोनों कानों को यदि कोई बन्द करना चाहे–तो दोनों हाथों से ही बन्द हो सकते हैं अन्यथा नहीं। अर्थात् पूर्ण क्रियात्मक आचरण या कर्म ही कान के दोषों को बन्द कर सकता है। अधूरा कर्म उसके दोषों को नहीं दबा सकता।

२७–८–३६ रविवार ७–४५
११ भादों–त्रयोदशी प्रातः

अपने को पहचानो ?

परमात्मा की देन नष्ट न करो

स्वयं वाजिंस्तन्वं कल्पयस्व
स्वयं यजस्व स्वयं जुषस्व।
महिमा तेऽन्येन न सन्नशे

यजुर्वेद अ० २३ मन्त्र १५

१) बुद्धिमान् मनुष्य वह है जो परमात्मा की दी हुई वस्तु को नहीं खोता। जो विशेषता, गौरव, प्रतिष्ठा परमात्मदेव ने उसे दी है–उसे नष्ट नहीं करता। उसके

साधन वेद स्वयं कहता है।

२) पशु का बच्चा अपनी मां को नहीं पहचानता—अपितु मां पहचानती है। परन्तु मानुष—शिशु मां को पहचानता है।

३—६—३६ रविवार ७ बजे प्रातः
१८ भादों चतुर्थी

प्रत्येक धर्म-चिह्न से उसका दृष्टिकोण

प्रत्येक सम्प्रदाय (धर्म) अपना चिह्न रखता है। जिससे उसके अनुयायी पहचाने जाते हैं। मुसलमानों का चिह्न—मूत्रेन्द्रिय में खुतना करने का है, ईसाइयों का गले में सलेब (cross) का निशान है, और सिक्खों में हाथ में कड़े का चिह्न है तथा हिन्दू—आर्यों में सिर पर शिखा का चिह्न है। ये चिह्न सम्प्रदाय (धर्म) के दृष्टिकोण को भी प्रकट करते हैं। शिखा (चोटी) का चिह्न तो ब्रह्मज्ञान की प्राप्ति को प्रकट करता है। मनुष्य का अन्तिम लक्ष्य ब्रह्मज्ञान की प्राप्ति है। सिर का ज्ञान का केन्द्र है। हाथ (कर) कर्म का साधन है—सिक्खों में कर्म (सेवा) को प्रधान माना गया है। वे ऐसा ही आचरण करते हैं। सब ईसाई वाले को गले में क्रास चिह्न को गले लगाते हैं। उनके पादरी यही प्रचार करते हैं। हजरत ईसा साहब का यही आदेश था—यही प्रेमोपासना है। मूत्रेन्द्रिय कहलाती

है—जो पैदा करनेवाली, सन्तानवर्धक है। उनका अभिप्रा
भी सन्तान (प्रजा) को बढ़ाना है। मुसलमानों की प्रसन्नत
इसी में है—कि उनके भाई बढ़ जावें। मुसलमान अधि
हो जावें।

५—६—३६ मंगलवार ७ बजे प्रा
२० भादों—षष्ठी

कर्म-उपासना-ज्ञान की आवश्यकता कब तक

मनुष्य स्वतन्त्र—विचार होकर अपने को ऊंचा मा
लेता है एवं किसी भक्ति उपासना की आवश्यकता न
समझता। और कभी मनुष्य सबसे प्रेमभाव रखता हुआ—स
सम्प्रदायों से सच्चाई ग्रहण करने के विचार का ब
जाता है तो वह अपने आपको कर्म—पद से ऊंचा मा
लेता है। कर्म की आवश्यकता नहीं समझता, या क
समझने लग जाता है। यह भूल है। कर्म तो तब तक न
त्यागना चाहिए जब तक उसे क्षुधा लगती है और उसक
निवृत्ति यह आवश्यक जानता है। या कोई भी शुभेच्छ
मन में रहती है।

भक्ति तब तक नहीं त्यागनी चाहिए—जब तक प्रभु
युक्त नहीं हुआ।

ज्ञान की प्राप्ति तो तब तक आवश्यक है—जब त
प्रत्येक पदार्थ का ज्ञान (विशुद्ध) नहीं हो जाता त

परमात्मा सब वस्तुओं में दृष्टिगोचर नहीं होने लगता। ज्ञान अनन्त है। अतः इसका त्याग तो मुक्ति में भी नहीं होता। भक्ति समाधि में समाप्त हो जाती है—तथा कर्म शरीर की समाप्ति के साथ समाप्त होता है, पहले कभी नहीं।

७—६—३६ बृहस्पतिवार ६ बजे प्रातः
२२ भादों अष्टमी

भुवः

दुःख और मानसिक दुःख (क्लेश) तो केवल परमात्मा की भक्ति से दूर हो सकता है क्योंकि परमात्मा का नाम "भुवः" है। "भुवः" का अर्थ 'दुःखविनाशक' भी है और उपासना भी है। इनका परस्पर घनिष्ठ सम्बन्ध है।

८—६—३६ शुक्रवार ४—२५ प्रातः
२३ भादों नवमी

विषयों में यम नियम का बिगाड़

पांच विषय, पांच यमों, पांच नियमों को बिगाड़ते हैं। क्रोध से अहिंसा और शौच भ्रष्ट होते हैं। मोह से सत्य और स्वाध्याय रुष्ट होते हैं। लोभ से अस्तेय और सन्तोष नष्ट होते हैं। काम से ब्रह्मचर्य और तप तथा अहंकार से अपरिग्रह और ईश्वरप्रणिधान चट्ट होते हैं।

८ बजे प्रातः

पृष्टं यज्ञेन कल्पताम्

इस मन्त्र में प्रत्येक अङ्ग को यज्ञ के अर्पण करने और यज्ञ से सामर्थ्य पाने की प्रार्थना है। "पृष्टं" का अर्थ यहां वीर्य है। वीर्य किस प्रकार यज्ञ के काम आवे ? वीर्य से उत्पन्न की हुई सन्तान यज्ञ, ईश्वर–अर्पण हो।

११–६–३६ सोमवार ६ बजे प्रातः
२६ भादों–त्रयोदशी प्रातः

कैसी प्रार्थना करनी चाहिए ?

हम परमात्मा से दो प्रकार की प्रार्थना करते हैं। एक **तो** किसी अवगुण या शत्रु के दूर भगाने के लिए और दूसरी किसी गुण, कर्म या स्वभाव, वस्तु के प्राप्त करने के लिए। प्रथम अवस्था में तो हम जानते होते हैं कि कौन से अवगुण, दोष अथवा शत्रु हम अपने से दूर करना, या भगाना, या निकालना अथवा नष्ट करना चाहते हैं। परन्तु दूसरी दशा को नहीं जान सकते, कि कौन सा गुण, कर्म, स्वभाव और वस्तु हमारे लिए ऊंचा करनेवाले होंगे या हमारे लिए सुखकारी होंगे ? हमारी भलाई को समयानुसार–हमारा प्रभु ही जानता है। क्योंकि प्रभु सबकी भलाई और कल्याण करनेवाला, तथा वह कभी किसी का अमंगल करता ही नहीं। इसलिए प्रार्थना

करनेवाला भक्त है एवं सचमुच प्रभु पर विश्वास रखनेवाला सच्चा भक्त है—तो वह यही कहेगा—"जो जो गुण, कर्म स्वभाव और वस्तु हमारे लिए कल्याणकारी हों—वे हमें प्रदान करें, इससे उसका निश्चय अधिक यह होगा—कि "प्रभो ! वही भद्र है जो तेरी इच्छा है।" जैसे हम प्रतिदिन कहते हैं—**"ओ३म् विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परा सुव। भद्भद्रं तन्न आसुव।"** हे सकल जगत् के उत्पत्तिकर्त्ता, समग्र ऐश्वर्ययुक्त, शुद्ध—स्वरूप, सब सुखों के दाता प्रभो ! हमारे सम्पूर्ण दुर्गुण, दुर्व्यसन दुर्वासनाओं, कुचेष्टा, कुसंस्कारों, दुःखों दर्दों, संकटों, कष्टों, क्लेशों और दुर्दिनों को दूर कीजिए और तत्स्थान उत्तम गुणों, उत्तम कर्मों, उत्तम स्वभावों और श्रेष्ठ पदार्थों को प्रदान कीजिए।" तब यहां भद्र का अर्थ और भावना—प्रभु की मंगल इच्छा ही करनी चाहिए।

१३—६—३६ बुधवार १०—३०
२८ भादों अमावसव्रत प्रातः

वासना टालने का साधन

यह संसार सागर है—और विषयों का जल इसमें चारों ओर अथाह बह रहा है। वासनाओं की तरंगें (लहरें) एक के बाद दूसरी तीसरी उठ—उठ कर आ और जा रही हैं। समुद्र में नहानेवाले बुद्धिमान् जब भी लहर आती

है–उसमें डुबकी नहीं लगाते, अपितु कूदकर ऊंचे हो जाते हैं। लहर चली जाती है, उनको नहीं छूती, नाहीं बहा ले जाती है। वैसे ही विद्वान् बुद्धिमान् (मनुष्य) जब ही वासना की लहर मन में उठे उसके साथ वह बह नहीं जाता। अपितु अपने श्वास को ऊपर चढ़ा लेता है, तथा प्राणायाम के द्वारा ऊपर हो जाता है। वासना चली जाती है और उसका कुछ स्पर्श नहीं करती, न उसे बहाती, न डुबोती है।

संसार सागर से तरने के लिए नौका

इस सागर को पार करने के लिए, यह शरीर एक नौका है तथा यह नौका दक्षिण से उत्तर को जाती है। परन्तु इस विषयरूपी जल का बहाव दूसरे संसारी जलों की भान्ति उत्तर से दक्षिण की है। इसलिए दक्षिण से उत्तर को जाने में बहुत कठिनाई है। प्रभु ने साधन भी साथ दिये हैं। अर्थ और काम तो दाएं–बाएं के रस्से हैं और धर्म बादबान है। मोक्ष–सीधा, लम्बा और ऊंचा लट्ठ या बल्ला है जिसके चारों ओर वह बादबान से तनता है अर्थ और काम के रस्से धर्म के बादबान से खूब कसे हुए हैं–मोक्षरूपी बल्ले से इसकी गांठें बंधी हुई हैं। व्रिवेक इस, नौका में ब्रेक (लंगर या चेन) है। जो इधर–धर उचित रीति से फेरती है और ठहराती है। ज्ञान (गुरु)

इसका मल्लाह है। जीवात्मा यात्री या पथिक है। सब नोकाओं में धीरे–धीरे पानी स्वयं भर जाता है–नीचे से छिद्र या नाली के कारण। उसे मल्लाह के आदमी (शिष्य) निकालते हैं। यदि शिष्य न हों तो नौका डूब जावे। ऐसे ही प्राकृतिक शरीर के छिद्रों के द्वारा विषयरूपी जल भरने लगता है–तो सत्य रूपी शिष्य (जो ज्ञान का शिष्य है) तुरन्त निकाल देता रहता है यदि सत्य न हो–तो तब भी शरीर नौका डूब जाए।

शानदार निवास या निवासी

जब मकान शानदार बनाया जावे तो मकान निवासी शानदार नहीं बनता, अगंर मकान निवासी शानदार हो–तो वह मकान शानदार नहीं बनता। जितने महान् पुरुष महानात्मा आये हैं उनकी आत्मा शानदार थी, परन्तु उनके मकान झोंपड़ियां आदि साधारण दर्जे के बनते रहे। जहां श्रेष्ठ भवन बनाए जाते हैं–उनमें रहनेवाले धनाढ्य तो कहला सकते हैं–परन्तु आत्मा के शानदार नहीं कहला सकते।

स्थूल तथा सूक्ष्म दोनों ध्यान रखें

सदा स्थूल सूक्ष्म के आश्रित रहता है। स्थूल स्वत्व (सम्पत्ति) है और सूक्ष्म उसका स्वामी। जो स्थूल को

अधिक ध्यान से बनाएंगे सूक्ष्म में उतना ध्यान कम जाएगा एवं जो केवल सूक्ष्म का ध्यान करेंगे—उनकी स्थूल सम्पत्ति उतनी निर्बल हो जाएगी। अतः दोनों को परस्पराश्रित साध—साध्य समझकर आचरण करना चाहिए। स्थूल में नियमितता सूक्ष्म के लिए लाभकारी है। बाह्य को या स्थूल को, अन्दर के या सूक्ष्म के लिए तैयार करना चाहिए।

१८—६—३६ सोमवार ७ बजे प्रातः
२—आश्विन पंचमी

जड़ पदार्थ किस रूप में प्रभु की पूजा करते हैं

प्रश्न—प्रार्थना में जो यह कहा जाता है कि "सूर्य, चन्द्रमा, अग्नि, जल वायु और सब वृक्ष, पर्वत और समुद्र प्रभो ! तेरी स्तुति कर रहे हैं, तेरी पूजा में लगे हुए हैं—विनीत भाव से तुझे पुकार रहे हैं।" क्या यह सत्य है? इसका क्या अभिप्राय है ? जड़ वस्तुएं कैसे पूजा कर सकती हैं ?

उत्तर—सब जड़—पदार्थ अपने गुणों द्वारा प्रभु की सत्ता को प्रकट कर रहे हैं। उनमें जो गुण हम देखते हैं—वे सब प्रभु के दिये हुए हैं। मनुष्य अपनी वाणी से स्तुति करता है शब्दों के रूप में और जड़—पदार्थ अपने समस्त आकार से प्रकट करते हैं अपने गुण के रूप में।

उनका विनीतभाव उनके स्वभाव का नमूना है, एवं उनका कर्म, जो कर्त्तव्य प्रभु ने उनका नियत किया है। वे बिना भूल–चूक नियमित रूप में जो पालन हो रहा है, यही उनकी ओर से प्रभु–पूजा है। प्रभु की प्रजा के अर्पण उनका कर्म होना–यही प्रभु–पूजा है–क्रियात्मक रूप में। वह मनुष्य जो अपने पूज्य पिता–माता को झुकता तो है–परन्तु उनकी आज्ञा का पालन नहीं करता, वह अपने माता–पिता का पुजारी या भक्त नहीं कहला सकता। अपितु उनका शत्रु या वैरी होता है। ऐसे ही ये सब वस्तुएं प्रभु की आज्ञा–पालन करने से–उसकी पुजारी कहलाती हैं।

२०–६–३६ बुधवार ६–५
४–आश्विन–सप्तमी प्रातः

प्रत्येक जीव की पुकार अपनी-अपनी भाषा में

जितने पशु हैं वे सब पैदा होते ही जो बोली बोलते हैं या जो शब्द निकालते हैं–इससे वे अपनी मां को ही बुलाते हैं और वही शब्द अन्त तक उनके बोलने का रहता है। जैसे प्रत्येक मनुष्य का बच्चा अवां से पुकारता है, और वह अवां (अ ऊ म्) से अपनी मंगलमयी माता (परमात्मा) को जो उसकी गुप्त रीति से माता के गर्भ में

पालना करती रही है–उसे ही पुकारता है। तथा जब बड़ा होता है–इस मां का ज्ञान होता है–तब फिर मां अम्मां, पुकारने लगता है। परन्तु पशु तो इस अपनी ही मां को पुकारता है। बिल्ली का बच्चा 'म्याऊं–म्याऊं', बकरी का बच्चा, 'मैं–मैं' और भेड़ का 'बांई–बांई', गाय का 'बां–बां', कौए 'कां–कां' आदि–आदि। ये सब शब्द उनकी माता के सम्बोधन हैं।

२१–९–३६ बृहस्पतिवार ७–प्रातः
५ आश्विन–अष्टमी (शुक्ला) (लगभग)

पूर्ण आहुति

ओ३म् पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते।
पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते।।

प्रश्न– हवन यज्ञ के अन्त में उपरोक्त मन्त्र का पाठ करके **"सर्वं वै पूर्णं स्वाहा"** पर सब सामग्री, घी तीन बार दिया जाता है। इस मन्त्र पाठ का क्या तात्पर्य है ?

उत्तर– अग्निहोत्री यदि यज्ञ में पूर्ण श्रद्धा रखता हो और उसे इस बात का पूर्ण विश्वास हो–कि जो कुछ मैं आहुति दे रहा हूं–वह मेरी नहीं है। परमात्मा की दी हुई दात से–उसकी भेंट कर रहा हूं, और पूर्ण चमचा भर के देने पर भी जो शेष रह जाता है–वह भी पूर्ण ही रहेगा।

परमात्मा पूर्ण है इस पूर्ण से जो भक्त बना वह भी पूर्ण है, और जो शेष बच रहा वह भी पूर्ण है। सब कुछ अग्नि की भेंट कर देने पर भी अग्निहोत्री यदि वास्तव में अग्निहोत्री है—तो उसके पास फिर भी पूर्ण सामर्थ्य पूर्ण ऐश्वर्य बचा और बना रहता है। कभी उसके यज्ञ दान आदि करने से कभी किसी वस्तु में कमी नहीं आती। चाहे वह **"सर्वं वै पूर्णं स्वाहा"** की भांति सर्वस्व भी दे देवे। जैसे महात्मा कबीर ने कहा, 'दान दिये धन न घटे' जैसे चिड़िया समुद्र में से चोंच भर लेवे, वह स्वयं भी तृप्त हो जावे तो भी समुद्र पूर्ण का पूर्ण ही रहता है। नदी में से चुल्लू भर पानी भी पी लिया वह वैसी की वैसी भरी रहती है। आकाश में सब पदार्थ बनते हैं, सब में आकाश समाया हुआ है परन्तु शेष भी वैसे का वैसा पूर्ण ही है। अग्नि से सैंकड़ों दीपक जला लो, या अग्नियां जला लो—वह अग्नि वैसी की वैसी पूर्ण रहती है। ऐसे ही अग्निहोत्री को निश्चय से जानना चाहिए। निश्चय और श्रद्धा पूर्ण न होने के कारण मनुष्य अग्निहोत्री होकर भी अपूर्ण बना रहता है। जैसे अग्नि छः मासे की आहुति लेकर उसे सर्व—स्थान में, जहां यज्ञ होता है, भरपूर कर देती है—सुगन्धि से। ऐसे ही अग्निहोत्री अपने इस कर्म से सामर्थ्य में ऐश्वर्य में पूर्ण ही पूर्ण रहता है।

२४–६–३६ रविवार ८ बजे लगभग
८ आश्विन एकादशी

साधक को यम-नियम एवं अस्वाद व्रत पालना आवश्यक

व्रती को दो बातों की सावधानी आवश्यक है। यम-नियम के पालन करने में व्रती कई इन्द्रियों से आचरण रूप से क्रिया नहीं भी करता–चाहे मन के भीतर विकार पैदा हो, परन्तु व्रत या भय के कारण विकार को रोक लेता है। आंख की क्रिया, कान की, नासिका की। परन्तु वाणी–मुख का विषय–विकार रोकना कठिन है। एक तो स्वाद और दूसरा क्रोध। व्रती सुन्दर रूप देखकर अपने आप को रोक लिया करता है। कान से भी अश्लील राग–शब्द सुनने से अपने को पृथक् कर लेता है। सुगन्धित पदार्थों से भी मन को रोक लेता है। परन्तु स्वाद नहीं छोड़ता। बोलने में क्रोध भी कर जाता है। बस इसी पर अधिक काबू पाना–व्रती का बड़ा कर्त्तव्य है। यदि स्वाद में पड़ा रहा–खाने पीने की आदत को न रोका–तो लोभ–रोग जहां बढ़ा, वहां ब्रह्मचर्य का नाश होगा ही। एवं क्रोध पर नियन्त्रण न पाया–तो सदा द्वेष और घृणा से जलता रहेगा। शान्ति प्राप्त न होगी–व्रत किया व्यर्थ चला जाएगा।

२५–६–३६ सोमवार ६ बजे प्रातः
६ आश्विन द्वादशी

संध्या में वाक् आदि दो बार क्यों ?

संध्या में वाक्, प्राण, चक्षु, श्रोत्र–दो-दो बार हैं और नाभि, हृदय, कण्ठ, शिरः–एक .एक बार है। और भी कारण हैं–पर एक कारण यह भी है कि वाणी, नासिका, चक्षु, कान में दो प्रकार के दोष होते हैं–एक शारीरिक दूसरा आध्यात्मिक और नाभि, हृदय, कण्ठ, शिरः, में–एक प्रकार का ही रोग होता है। अतः ये दो–दो बार, और वे एक बार आये हैं।

२६–६–३६ मंगलवार ३–४५ बजे प्रातः
१० आश्विन त्रयोदशी

मनुष्य की प्रधानता कर्म से

१. मनुष्य के शरीर में दो बड़े मंगते हैं (भिखारी हैं) एक जीभ, दूसरा हाथ। ये दोनों बड़े दानी भी हैं।

ये ही शासक और शक्ति हैं और इन्हीं को दण्ड भी बड़ा मिलता है। जिस मनुष्य ने इस दोनों शक्तियों को मंगता बना दिया–वह इस संसार से भी गिर गया और परलोक में नीचे जा पहुंचा। और जिसने इन्हें संभाल लिया–वह स्वयं सबकी संभाल बन गया। भिखारी जीभ से मांगता है–गिड़गिड़ाता है, तथा हाथ सामने, लेने को

उठाता है। ये ही दोनों कर्म की प्रधान इन्द्रियां हैं। इनकी प्रधानता से मनुष्य प्रधान कहलाता है और बन सकता है।

कसौटी

२. वही मनुष्य दूसरे मनुष्य के दोष देखता और प्रकट करता रहता है, जिसमें स्वयं दोष हों। जितने भी अधिक दोष किसी के निकालनेवाला होगा वह समझो—स्वयं कोई बड़ा दोष रखता है। जितने जितने कम दोषों का स्वामी होगा—उतने ही दूसरों के कम दोष दृष्टि में लाएगा। परन्तु जिसमें दोष ही नहीं—वह किसी को दोषी कहता ही नहीं। परमात्मदेव निर्दोष हैं—वे किसी के दोष नहीं उघाड़ते।

सन्त सुधारक

३. कुत्ता खाकर भी भौंकता है। यही कहावत है कि जो किसी का खावे—फिर उसको भौंके। उसका गिला (शिकायत) करे—उसे कुत्ता कहा जाता है। परन्तु स्वामीभक्त (विश्वासपात्र) कुत्ते सिवाय स्वामी के अन्न के किसी अन्य का डाला हुआ अन्न नहीं खाते। चोर कुत्ते को रोटी डालकर चुप करा लेता है। परन्तु विश्वासपात्र कुत्ता चोर का अन्न खाता ही नहीं, उसे पकड़वाने के लिए नहीं अपितु स्वामी की वस्तु बचाने के लिए भौंकता और चिल्लाता है। सच्चा सन्त जिसका खाता है—उसके ही

दोष उसे बताता है। वह गिला और शिकायत किसी से नहीं करता। परन्तु दोष अवश्य निकालता है। उसकी भावना पवित्र होती है कि वह जिसका खाता है—उसका सुधार कर जाता है।

२७–६–३६ बुधवार ५–२० प्रातः
११ आश्विन चतुर्दशी व्रत

सेवा धर्म

जो सेवा बड़ों से आरम्भ होती है—वह छोटों तक पहुंच जाती है। तब सब बड़े और छोटे सेवाभाव में रंग जाते हैं। परन्तु जो सेवा छोटों से आरम्भ होती है, वह सेवा मध्य में ही रह जाती है। प्रथम प्रकार की सेवा में परस्पर प्रेम संगठन उत्पन्न हो जाता है। दूसरी प्रकार की सेवा में घृणा और ग्लानि, मतभेद और अविश्वास—एक दूसरे के प्रति हो जाता है।

२. जब ही सेवा का विचार किसी के मन में आवे वह समझे कि यह प्रभु की मुझ पर कृपा हो रही है उसे तुरन्त ही कर लेवे। प्रतीक्षा न करे या विलम्ब न करे। पवित्र—मन्दिर के अन्दर संगत बैठी हुई है। किसी महान् पुरुष का उपदेश हो रहा है। एक निर्धन ने पंखा उठाया। वह संगत को पंखा करने लग पड़ा। बहुत देर हो गई किसी ने उधर ध्यान न दिया। मेरी दृष्टि गई तो मुझे
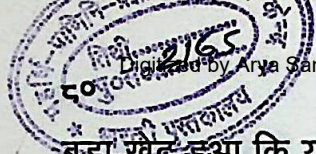
बड़ा खेद हुआ कि यह बड़ी देर से पंखा कर रहा है। वह दूसरे सिरे पर था। मैंने मन में विचार किया कि मुझे ही पंखा करना चाहिए। इस बेचारे से तो कोई लेता ही नहीं। ऐसा विचार किया कि अच्छा अब यहां से उठूँ ना। मेरे तक जब पहुंच जावेगा, तो तुरन्त उठकर ले लूंगा। पर क्या देखा कि वह बेचारा बस दो कदम और पंखा करके नीचे रखकर, हाथ जोड़कर नमस्कार करके घर को चलता बना। मुझे बहुत खेद हुआ कि ओहो कितनी गलती की। यदि उसी समय विचार करते ही, साथ ही साथ जा पहुंचता, तो वह भी बैठ जाता। उपदेश सुनकर ही जाता, इससे वंचित न रहता तथा मेरा कर्त्तव्य भी निभ जाता। बड़ा पछताया। परन्तु **'अब पछताये होत क्या, जब चिड़िया चुग गई खेत'** वाला उदाहरण हुआ। अतः ज्यों ही मनुष्य के मन में सेवा–पुण्य कार्य का संकल्प आये–वह समझ लेवे 'यह प्रभु की दात मिल रही है।' तुरन्त ही उसे कर लेवे।

श्रेष्ठतम योनि श्रेष्ठतम कर्म

३. जैसी जैसी योनि में जीव जाता है–वैसे वैसे वह काम करता है। मनुष्य को जो प्रभु ने योनि दी है, वह सब प्राणियों और योनियों से श्रेष्ठतम है। अतः इसे कर्म भी श्रेष्ठतम करने की वेद में आज्ञा मिली है और वह

श्रेष्ठतम कर्म यज्ञ ही है। सब योनियों में (सब प्राणी–चाहे वे नीच हों या उत्तम) उनसे प्रभु यज्ञ करा रहे हैं। वे स्वयं नहीं कर रहे। उनकी सेवा उपकार सीमित हैं। मनुष्य जो यज्ञ या सेवा कर सकता है वह सर्वप्राणियों के लिए कर सकने की सामर्थ्य रखता है। संसार भर में सुख और शान्ति जिससे फैले, वही कर्म श्रेष्ठतम हो सकता है। सुख का सम्बन्ध तो बुद्धि के निश्चल होने से, और शान्ति का सम्बन्ध मन से है। मन पवित्र हो, ईर्ष्या–द्वेष से रहित हो तब शान्ति ही शान्ति है। ऐसे मन वाला ही दूसरे को शान्ति दे सकता है। पवित्र मन आत्माएं ही हिंसक जन्तुओं से भी वायुमण्डल को शान्त करा देती हैं और निश्चय ज्ञान होने पर ही सुख प्राप्त हो सकता है। ये दोनों चीजें बुद्धि और मन मनुष्य को ही (स्वतन्त्र) मिले हैं। अर्थात् प्रभु ने दिये हैं अतः मनुष्य का कर्त्तव्य हो जाता है कि वह अपनी और संसार की बुद्धि और मन को शुद्ध पवित्र बनाने का प्रयत्न करे। तभी वह श्रेष्ठतम कर्म बन जावेगा। जितनी भी संसार की योनियां हैं उन सबसे वृक्षों की योनि अधिक उपकार करती है। क्योंकि वह शुद्ध प्राण उत्पन्न करती है और प्राण ही प्राणिमात्र का आधार है। पर मनुष्य उससे अधिक उपकार इसलिए कर सकता है कि वह शरीर से बढ़कर आत्माओं का कल्याण, और आवागमन के बन्धन चक्र से विमुक्त करा सकता है।

निन्दक को मौन कराने का ढंग

१–१० बजे दिन

४. यदि तुम चाहते हो कि तुम्हारे विरुद्ध कोई न बोले तो किसी को रुष्ट न करो। परन्तु ऐसा होना कठिन है। सारे संसार को कोई कैसे प्रसन्न कर सकता है ? स्वार्थी तो कभी ऐसे प्रसन्न हो नहीं सकता। हां–सतोगुणी मनुष्य सबका भला चाहता है। परन्तु संसार में रहना एक विकट समस्या है। इसका समाधान यह है। सतोगुणी मनुष्य विरुद्ध नहीं होगा तुम उसके चरणों में नमस्कार किया करो–जब–जब मिलो। रजोगुणी विरुद्ध नहीं बोलेगा यदि तुम उसका यश उसके सम्मुख और पीछे भी करते रहो। तमोगुणी मनुष्य या प्राणी नहीं भौंकेगा। जब उसके मुख में तुम कुछ डाल दिया करोगे। यही गुर है अपने विरुद्ध किसी को न होने देने का।

जल से पूर्ण शान्ति

२ बजे दिन

५. जल–ज-ल से बना है। ज–जन्म, ल–लय अर्थात् जिसका जन्म से लय पर्यन्त सम्बन्ध है, वह जल ही है। कैसे ? जीवात्मा जब कभी भी शरीर में आता है, तो रज–वीर्य के द्वारा ही गर्भ स्थित होता है। रज और वीर्य जल से उत्पन्न होते हैं और स्वयं भी जल रूप हैं और

जब कोई मर जाता है, तब उसका चिह्न यह है कि शरीर समस्त ठण्डा पड़ जाता है जैसे बर्फ। बर्फ जैसे अपने संग से सब वस्तुओं को सुकेड़ लेती है, जमा देती है ऐसे ही वह ठण्डक बर्फानी जल का रूप होकर मनुष्य देह के सब अंगों को अकड़ा और सुकेड़ देती है। खून चर्बी, वीर्य बलगम (कफ) आदि सब को जमा देती है। ऐसी ठण्डक शरीर को शान्त कर देती है। जीवन में जल शान्ति देता है, आदि में और अन्त में। जब कोई माता गर्भवती होती है, जब शिशु बाहर आता है, जो जल से ही पैदा होता है जिसे जल ही ने पेट में उठाया और सहारा दिया हुआ है और जल ही के वेग से योनि से बाहर आता है। उस समय वह बच्चा दुःखी माता को शान्ति देनेवाला होता है। माता शुक्र धन्यवाद करती है। मध्य में, तृषा और गर्मी की शान्ति (इसी जल से) मनुष्य करता हैं अंत में शरीर को जीवात्मा (प्राण निकलने पर) शान्त कर देता है। भाव यह है कि जल शान्ति का दाता है। शारीरिक, मानसिक और आत्मिक शान्ति भी इसी से मिल सकेगी। जिसका शरीर और आत्मा से घनिष्ठ सम्बन्ध है। जल के स्थूल, सूक्ष्म, कारण रूपों को जानकर, उनके गुण—कर्म स्वभाव को धारण करने से शरीर और आत्मा को शान्ति मिल सकती है। जल में सत्त्व, रज और

तम तीनों गुण हैं। कारणरूप सत्त्व का, सूक्ष्मरूप रज का और स्थूलरूप तम का है। जो लोग केवल इसके स्थूलरूप को जानते हैं–वे अपने स्थूल शरीर को शान्त कर सकते हैं और जो सूक्ष्म रूप को जान जाएं तो अपने मन को शान्त तृप्त कर सकते हैं एवं कारण रूप को जाननेवाला आत्मा को शान्त कर सकता है।

४–३० बजे

कृपणता

६. अन्न का कृपण शरीर का कृपण है। धन का कृपण बुद्धि का कृपण है। वचन (वाणी) का कृपण मनका (नैतिक) कृपण है। ज्ञान–उपदेश का कृपण आत्मा का कृपण है। कृपणता दो प्रकार की होती है। एक तो अधिकारी को न देना, दूसरी (थर्ड क्लास) अत्यन्त घटिया वस्तु देना, या कठोरता से। अर्थात् अन्न–भोजन खिलाने में संकोच करते हैं, थर्ड क्लास वस्तुएं लेकर या थर्ड–क्लास कपड़ा खरीदकर के दान या सेवा करते हैं वे भी कृपण गिने जाते हैं। ऐसे व्यक्तियों को शरीर दुर्बल मिलता है और पाचनशक्तिवाला नहीं मिलता। धनदान देने में जो बहुत गिनती करता है–उसकी बुद्धि पवित्र नहीं होती। वाणी से जो मीठा नहीं बोलता, मानपूर्वक, ललितभाषा में नहीं बोलता, अपने वचनों से दूसरे का प्रशंसक नहीं

बनाता—वह कृपण है। ज्ञानी होकर जो दूसरे को उपदेश नहीं करता, अपनी उन्नति चाहता है—वह भी कृपण है। वचन की कृपणता महती कृपणता है। जिस पर कुछ भी खर्च नहीं आता। छोटा या बड़ा—सबसे मानयुक्त वचनों से बोलना। अपने मत के हों अथवा अन्य मतों के नेता, पूज्य पुरुष एवं पुस्तकें तथा पवित्र स्थल, उनके नाम लेने में, उनकी चर्चा उल्लेख करने में बड़ी प्रतिष्ठा, मान और आदर रखना चाहिए। उससे अपना जीवन सुन्दर, अपना भाषण सुन्दर बनता है। दूसरों में प्रेम और अपनी आकर्षण शक्ति बढ़ती है।

२८—६—३६ बृहस्पतिवार ४ बजे
१२ आश्विन, पूर्णमासी प्रातः

अन्दर के पट तब खुलें, बाहर के जब देय

जब मनुष्य संध्या करने के लिए आंख मूंद, चौकड़ी मार—आसन लगाकर प्रभु दरबार में बैठता है। कुछ क्षणों के पश्चात् बन्द हुई—हुई आंख होने पर भी मस्तिष्क में नाना आकार आजाते हैं। कान के द्वारा कई (अनेक) शब्द सुनाई देने लगते हैं तथा अपने आप बिना किसी की विद्यमानता के भीतर जिह्वा बातें करती दीखती है। यही आंख, कान, मुख (हमारे) बन्द नहीं होते। इनके बन्द होने पर ही निराकार प्रभु की उपासना समझनी चाहिए।

चश्म बन्दो गोश बन्दो लब्बे बंद।
गर बीनी सरें हक बर मन बखंद।।
आंख कान मुख बन्द कर नाम निरंजन ले।
यदि फिर भी दर्शन न हो तो मुख पर डालो खे।।

तभी किसी महात्मा ने ऐसा कहा है "मनुष्य बाह्यमुख रहने में इन्हें अन्दर से बन्द नहीं कर सकता। ये दो (आंख–कान) इन्द्रियां तो ज्ञान की हैं—और एक इन्द्रिय (वाणी) कर्म की है। हमारी वाणी (कर्म) में सत्य नहीं आता—जब तक, यह वाणी अन्दर अन्दर बातें करती रहेगी। एवं ज्ञान में भी सत्य और न्याय नहीं आता, तब तक वे भी बन्द नहीं हो सकेगी। अतः इनका गुर सत्य ही है।

२६–६–३६ शुक्रवार ३–३० बजे
१३ आश्विन–कृष्ण प्रतिपदा श्राद्धपक्ष प्रातः

प्राप्त को छोड़ना अप्राप्त के पीछे दौड़ना-मूर्खता

शास्त्रकारों ने बताया है कि जो प्राप्त को छोड़ के अप्राप्त के पीछे दौड़ता है मूर्ख होता है। आज संसार लगभग समस्त ही प्राप्त की रक्षा करता नहीं, और जो प्राप्त नहीं उसके लिए रात दिन टक्कर मारता है। धन, माल, पुत्र, स्त्री, मान–प्रतिष्ठा के लिए दौड़ धूप लगा रहा है। परन्तु प्रभु ने जो आंख कान, वाणी, हाथ आदि

इन्द्रियां प्रदान की हैं—जो मनुष्य को प्राप्त हैं—इनकी रक्षा कोई नहीं कर रहा। इन्हें गंवाकर धन माल के पीछे पड़े हुए हैं। फिर यह कैसे सुखी रहे।

२. नाशवान् स्वामी का स्वामित्व नाशवान्

जो वस्तु शरीर के लिए होगी वह अवश्यमेव नाशवान् होगी। क्योंकि स्वामी नाशवान् होगा—तो स्वामित्व कैसे अविनाशी बन सकता है ? धन, माल, पुत्र—परिवार, मान—प्रतिष्ठा सब शरीर का स्वामित्व है। क्योंकि शरीर नाशवान् है—अपितु क्षण—क्षण में परिवर्तित होता है—ऐसे ही सब वस्तुएं जो इसके लिए हैं—या इसका स्वामित्व हैं, सब नाशवान् हैं।

३. सांसारिक कार्यों का आधार मति, शक्ति, सम्पत्ति

संसार का कार्य तीन वस्तुओं के अधीन चलता है १. मति, २. शक्ति, ३. सम्पत्ति। इसके बिना कोई व्यापार (संसार का) नहीं बन और चल सकता। हां—परमात्मा दो वस्तुओं से संसार को चलाता है। एक मति, दूसरी शक्ति से। जिसका नाम ऋत और सत्य है। ऋत का अर्थ शुद्ध ज्ञान, सत्य का अर्थ न्याय (शक्ति) है। ब्राह्मण मति से और राजा शक्ति से तथा वैश्य सम्पत्ति से अपने कार्यों

को चलाता है। ब्राह्मण के लिए मति, मुख्य, शक्ति—सम्पत्ति गौण हैं, क्षत्रिय के लिए शक्ति मुख्य मति—सम्पत्ति गौण हैं। वैश्य के लिए सम्पत्ति मुख्य एवं मति शक्ति गौण रहती है। अभिप्राय यह है कि मुख्य और गौण इन तीन वस्तुओं के बिना संसार में काम नहीं चल सकता। सम्पत्ति शुभ—कर्म से पैदा होती है। शक्ति प्रभु की उपासना से एवं मति ज्ञान से बनती और बढ़ती है। मति हो तो शक्ति सम्पत्ति प्राप्त हो सकती है। मति न हो—तो शक्ति और सम्पत्ति नष्ट तो होगी—बढ़ेगी नहीं।

३०—६—३६ शनिवार ३—५५
१४ आश्विन द्वितीया प्रातः

उपदेश का प्रभाव हृदयभूमि के अनुसार

जो भूमि कठोर होती है—उस पर किसी चलनेवाले का निशान नहीं पड़ता। तथा जो भूमि नर्म होती है—वहां पर हरेक चिह्न (छोटे से छोटा और बड़े से बड़ा) दिखाई देने लग जाता है। चोर चले या साधु, सांप चले या च्यूंटी—अभिप्राय यह है कि चिह्न मालूम हो जाते हैं—और सबकी पहचान हो सकती है। मनुष्य का मन एक भूमि है। यदि मन कठोर है तो कोई भी उपदेश किसी का भी सुने—उस पर कोई चिह्न नहीं जमता। हां, जिसकी मनरूपी भूमि आर्द्र नर्म लचकीली होगी, उस पर हर एक

उपदेश और घटना का ऐसा प्रभाव पड़ेगा कि इस पर चिन्तित हो जावेगी। यदि कोई पाप का संस्कार भी आये तो वह भी प्रत्यक्ष दीखने लग जावेगा।

२. मनुष्य शरीर कर्मक्षेत्र

मनुष्य का शरीर कर्मक्षेत्र है। इसमें कर्मों के बीज बोये जाते हैं। जो सिद्धान्त किसान के लिए भूमि के उपजाऊ करने के लिए है—ठीक उसी प्रकार मनुष्य के लिए—वही सिद्धान्त कर्मों की खेती को उपजाऊ करने के लिए है। भूमि में ब्राह्म—मुहूर्त में किसान हल चलाता है। भूमि को नर्म—पोला करता है। उसमें असंख्यात जीव (च्यूंटी मकौड़े सांप निकलते हैं और मारे जाते हैं, कई भाग जाते हैं। ऐसे ही मनुष्य जब ब्राह्म मुहूर्त में इस मनरूपी भूमि को कुरेदता है, जांच पड़ताल निरीक्षण का हल चलाता है, तो अनेक असंख्यात कुवृत्तियां सामने आजाती हैं। कइयों को पश्चात्ताप से कुचल देता है, एवं कई भयभीत होकर दूर हो जाती हैं। कई नीचे दबी पड़ी रहती हैं।

१—१०—३६ रविवार ६—३५
१५ आश्विन तृतीया प्रातः

शब्द से उत्पत्ति और विनाश

शब्द ही काम को उत्पन्न करता है, क्रोध को उत्पन्न

करता है। लोभ और मोह तथा अहंकार भी–इसी से पैदा होते हैं। इसी से हंसना और इसी से रोना उत्पन्न होता है। इसी से प्रेम द्वेष का बीज पैदा होता है। जैसे अग्नि प्रकाश भी करती है–और जला भी देती है। जल हरा भरा भी करता है और डूबा भी देता है। ऐसे ही शब्द इन सब विषयों को उत्पन्न करने का कारण है, तो इनको वश में करने का भी शब्द ही साधन बनता है।

१–१०–३६ सोमवार ७–१५
१६ आश्विन–चतुर्थी

वाणी सुधार–सबसे कठिन

संसार में सबसे कठिन काम वाणी का सुधार है। सुधरी वाणी उसे कहते हैं–जो अपने प्रत्येक–बोल में बड़े सभ्य और शालीन, प्रिय, आकर्षक शब्द बोले। प्रत्येक नाम और काम को ऐसी शान से बोले कि नामी के गुण स्वतः टपकने लग जायें। ऐसा व्यक्ति जो बड़े मान से शब्द बोलता है–उसके लिए संभवतः किसी महात्मा ने कहा होगा–

जिस जा पै तेरा जिक्र हो, जो जिक्रे खैर ही।
और तेरा नाम लें तो अदब से लिया करें।।

पूज्य पुरुषों और उनके कार्यों और रचनाओं को वे ही लोग प्रत्येक के साथ बात–चीत में मान से बोल सकते

हैं, जिनमें श्रद्धा भरी हुई होती है। यही बड़ी कसौटी है, श्रद्धालु की। मैं जब कहता हूं, "वेद ऐसा कहता है", 'वेद में यह लिखा है' तो समझ लो कि मेरी 'वेद–भगवान्' में श्रद्धा अगाध नहीं। मैंने अभी वेद के मर्म को नहीं समझा कि मुझे क्या शब्द बोलना चाहिए। जितना भी मनुष्य अपनी वाणी के बोल में सुधार का प्रयत्न करेगा उतना वह स्वयं संसार में अधिक प्रिय बनेगा।

यश से बल और बलहीनता किस किस से ?

५–१०–३६ मंगलवार ३–३० बजे प्रातः
१७ आश्विन–पंचमी

१. क्षत्रिय वैश्य और शूद्र का यश उनके सम्मुख करने से उनके उत्साह और बल को बढ़ाता है। परन्तु ब्राह्मण या साधक के सम्मुख यश, कीर्ति करने से उन में बलहीनता उत्पन्न होती है। हां–ब्राह्मण, साधु साधक जो परिपक्व हो चुके हैं, जिनको लाभ–हानि, शोक–हर्ष, एक समान हैं–उनका यश चाहे सम्मुख हो, चाहे परोक्ष, उन पर प्रभाव नहीं डालता।

बड़े छोटे की सेवा का अन्तर

बड़ा व्यक्ति जो सेवा का काम करता है, और ऐसी सेवा जैसे नौकर करता है, तब इस सेवा का मूल्य बढ़

जाता है। नौकर की की हुई सेवा का मूल्य नौकर के पद के अनुसार होता है। एवं बड़े व्यक्ति की की हुई वही सेवा उसकी पद मर्यादा के अनुसार मूल्य पाती है। बड़ा व्यक्ति सेवा करे—तो उससे उसकी दो शक्तियां बढ़ती हैं—१. यश और २. बल। परन्तु नौकर जो सेवा करता है, उसका तो यश होता है—पर बल नहीं बढ़ता।

३. सेवा क्या है ?

दूसरे की चिन्ता को अपने से लगाना और अपनी चिन्ता को खा जाना। यह कठिन काम है।

किस्मत ने किया सबको अकसामे अजलने।
जो शख्श कि जिस चीज के काबिल नजर आया।।
बुलबुल को दिया नाला तो परवाने को जलना।
गम हमको दिया सबसे जो मुश्किल नजर आया।।

अर्थात् मनुष्य को दूसरे की चिन्ता अपनाने के लिए पैदा किया है।

७—१० प्रातः

पशु का धब्बा—मनुष्य का धब्बा

पशु के शरीर पर जो धब्बा हो, वह सदा प्रकट रहता है। वह छिपा नहीं सकता तथा पशु को लगाया हुआ धब्बा (चिह्न) उसे कुरूप नहीं बनाता। परन्तु मनुष्य को कहीं भी धब्बा (चिह्न) हो तो भद्दा लगता है। हां यदि

शरीर से किसी भाग पर (गर्दन से कहीं नीचे) हो तो वह छिपा भी सकता है—वस्त्रों से। परन्तु यदि हाथ पर धब्बा हो, या मुख पर, तो वह किसी प्रकार भी नहीं छिपा सकता। अर्थात् हाथ (प्रधान कर्मेन्द्रिय) मुख सब ज्ञानेन्द्रियों का स्थान है। कर्म और ज्ञान में जो धब्बा—आ जावेगा—वह छिप नहीं सकता। लोगों पर प्रकट हो ही जाएगा। हां भक्ति—उपासना में ठगी (धब्बा) भक्त मुल्लाहजी छिपाये रखते हैं, और छिपा सकते हैं।

अज्ञानी श्रद्धालु

जिस श्रद्धा के पूरा करने में श्रद्धेय का अहित—अकल्याण हो—वह श्रद्धालु उसका काम असफल करनेवाले और उसे दुःख देनेवाले होते हैं। वह श्रद्धालु मूर्ख गिना जाता है। वह श्रद्धा किस काम की—जो गुण प्राप्त न कराये।

धनी या भक्त को नट-पना नहीं दिखाना चाहिए

कोई धनी या प्रतिष्ठित व्यक्ति यदि किसी सभा में रहकर नट—पना करके अपने उपस्थित जनों को प्रसन्न करने का स्वभाव रखता हो तथा यह भाव रखता हो—मुझे सब चाहे, मैं इनकी गोष्ठी का शृंगार समझा जाऊंगा, तो

गोष्ठी के सभ्य उसे पूज्यता के भाव से कभी न देखेंगे, अपितु उसे छोकरा ही समझेंगे। क्योंकि उसके स्वभाव छोकरों के होंगे उसकी मान प्रतिष्ठा धन और पद मर्यादा के अनुसार न करेंगे एवं कोई प्रभुभक्त तपस्वी यदि अपने प्रेमियों में नट–पना करके या दिखाकर उन्हें प्रसन्न करना चाहे और स्वभाव से कि लोग उसकी चाहना करते रहें तो लोग उसे भक्त या तपस्वी कदापि नहीं समझेंगे। अपितु एक खिलौना और ठग मुल्लमा करतूती समझकर उसका मज़ाक उड़ाया करेंगे। दोनों भूल करते हैं, और अपने पद को कलंकित करते हैं–यदि वे ऐसा नटवापन दिखाते हैं।

४–१०–३६ बुधवार ६–३० प्रातः
१८ आश्विन षष्ठी

गुण और उनकी प्राप्ति

१. जितने गुण–अवगुण स्त्रीलिंगवाले हैं–वे मनुष्य को माता से मिलते हैं। और जितने गुण अवगुण पुरुषरूपी हैं (पुल्लिंग हैं) वे पिता से मिलते हैं। उदाहरण रूप से–लज्जा, दया, मैत्री, धृति, नम्रता, उदारता, पवित्रता आदि माता से मिलते हैं। ईर्ष्या, मत्सरता कलुषिता भी। एवं काम क्रोध, लोभ मोह अहंकार–ये अवगुण पिता से मिलते हैं। वीर्य–बल आदि गुण पिता से मिलते हैं।

तेज और मन्युता—प्रभु भक्ति से मिलते हैं। ज्ञान गुरु से, भक्ति माता से, कर्म (पुरुषार्थ) पिता से सीखने चाहिएं। ईश्वर की भक्ति से आत्मा, अतिथि पूजा से मन और गुरु सेवा से बुद्धि तथा माता–पिता की सेवा भक्ति से शरीर (निरोग–सुडौल–स्वरूप) पवित्र होते और मिलते हैं।

५–१०–३६ बृहस्पतिवार ३–१४ बजे प्रातः
१६ आश्विन–सप्तमी

किसके चरणों में मस्तक नवायें

अपने मस्तिष्क को उस महात्मा के चरणों में टेको जिसके चरण पवित्र हो चुके हों। जिससे तुम्हारा मस्तिष्क उन पवित्र चरणों के साथ छूने से पवित्र हो सके। वे कौनसे चरण होंगे **"तपः पुनातु पादयोः"**। जिस महात्मा ने तप में सिद्धि प्राप्त की हो। किसी भी साधु महात्मा के चरण छूने योग्य नहीं—जब तक कि वह तप करके स्वयं को प्रभुभक्ति, सेवा आदि में डाल न चुका हो। ऐसे तपस्वी मुख–मण्डल से अग्नि का तेज प्रकाश निकलता है। उसकी आंखें तेज–ओज बरसानेवाली होंगी। उसका मस्तक हंसता दिखाई देगा।

मिटादे अपनी हस्ती को अगर तू मर्तबा चाहे

२–२० मध्याह्नोत्तर

यजुर्वेद अध्याय १५, मन्त्र २३ है—ओ३म् **स्वयं वाजिंस्तन्वं**

कल्पयस्व। अपने तन से अर्जित अन्न सामर्थ्य को बढ़ाओ।

प्रश्न– यह सामर्थ्य कैसे बढ़े ?

उत्तर– यदि अन्न की बोरी भरकर रखी जाये अथवा पल्ला भरकर रखा जाये तो उसकी सामर्थ्य नहीं बढ़ेगी। यदि वह अन्न, पावभर भी, मेरे शरीर में पहुंच जावे और ऐसे दूसरे शरीरों को खिलाया जावे–तो अन्न का रूप बल में बदल जावेगा, अन्न नहीं रहेगा। बल ही बल–सामर्थ्य पैदा हो जावेगी। परन्तु यदि कोई चाहे कि अन्न की अपनी सामर्थ्य ही बढ़े और अन्न भी स्थिर रहे–तो फिर जहां से अन्न उत्पन्न हुआ है उसके अर्पण कर दिया जावे तो अन्न की सामर्थ्य एक की अनेक बढ़ जायेगी। ऐसे ही जो वस्तु जहां से आती है, उसके अनु अर्पण हो जावे, तो उसकी सामर्थ्य एक से अनेक होकर रहती है। समस्त धन–सम्पत्ति और पुत्र आदि जो प्रभु से मिले हैं, यदि प्रभु के अर्पण कर दिये जावें तो उनकी सामर्थ्य बढ़ जाती है। एक पुत्र अर्पण हो–लाखों पुत्र अपने हो जावेंगे। धन–एक रुपया अर्पण किया जावे–अनेक रुपये प्राप्त होंगे। मान–प्रतिष्ठा का अर्पण हो, एक पद–अलंकार का त्याग करो, अनेक पद–अलंकार मिल जावेंगे। अपनी अल्प आयु नाम और शरीर को अर्पण करो–तो हजारों वर्ष तक नाम अमर हरेगा।

निष्काम सेवा

२. जो मनुष्य सेवा तो करता है परन्तु लोग उसके पास आकर कहते हैं–कि हमारी अमुक सहायता करो, हमारी अमुक तकलीफ को दूर करा दो। वह मनुष्य बड़ी प्रसन्नता से उनके साथ हो लेता है, चाहे छोटा आये या बड़ा। पहले तो वह जब इस कार्य को आरम्भ करता है, वह सब (छोटे बड़े) का नम्रता से स्वागत करता है, उनको अपने पास ठहराता, बिठाता। घर से खर्च करके खिलाता–पिलाता भी है तथा काम संवार देता है। जब ज्यों–ज्यों उसकी प्रतिष्ठा बढ़ती जाती है, दिनभर लोग उसके पास आते हैं यहां तक कि उसे विश्राम तो क़हां, रोटी भी समय पर खानी नसीब नहीं होती–अपितु कभी–कभी उसे शौच और दातुन का समय भी दुर्लभ हो जाता है तब वह मनुष्य घबराता है और उसमें क्रोध (नम्रता के स्थान पर) और कठोरता (उदारता के स्थान पर) उत्पन्न हो जाती है। अब वह सबके सामने शिकायत करता है–कि "लोग ऐसे मूर्ख हैं–कि न अवसर देखते हैं न समय, मुफ्त जो काम करा दिया अब तंग करते हैं।" ऐसे व्यक्ति का उपकार सेवा स्थायी नहीं होती। रजोगुणी भाव की होती है। केवल अपनी ही यश–कीर्ति सुनने के लिए होती है। इसका फल आगे को नहीं मिलता। अपितु

कभी–कभी इसी जीवन में प्रशंसा के स्थान पर निन्दा (शिकायत) को प्राप्त हो जाता है। परन्तु जो मनुष्य स्वयं ही जाकर दुःखियों के दुःख की खबर लेते और निपटाते हैं उन्हें जितने ही अधिक दुःखी मिलें, और सेवा का अवसर बने, उनको बड़ी प्रसन्नता होता है—और वे थकते नहीं। किसी से कहते नहीं। न वे यश चाहते हैं। उनकी सेवा सच्ची, सेवा स्थायी और आत्मा पर प्रभाव करने वाली होती है। बहुत से धर्मात्मा–विचार के डाक्टर, हकीम, वैद्य, बहुत ऊंचे विचारों के होते हुए भी, सन्त–सेवा करते–करते घबराकर शिकायत करते हैं कि लोग हमें बहुत तंग करते हैं, कि दिन रात व्यर्थ ही जगाते और ले जाते हैं। यदि फीस रखते तो वे लोग जरा होश से बुलाते। जो उपकार करनेवाला मनुष्य सेवा करते–करते थक जाता, घबरा जाता और शिकायत करता है। लोग निस्सन्देह अज्ञानवश उसे ऐसा कष्ट देते हैं। परन्तु उपकारी मनुष्य का हृदय भी उन्हीं की भान्ति संकुचित हो जाता है।

६–१०–३६ शुक्रवार ७ बजे प्रातः
३० आश्विन–अष्टमी

देव—सात्त्विक राजसिक और तामसिक सेवा

परमात्मा ने सबसे पहले सृष्टि जो रची, वह सेवकों

की थी। सेवक भी ऐसे—जो बिना प्रतिदान कर्त्तव्यरूप में, नियमित अवस्था व्यवस्था से संसार का उपकार अपने आप करें। और प्रभु की आज्ञानुसार करें। ऐसे निष्काम सेवकों का नाम देव कहलाया—सूर्य, चन्द्रमा, आकाश और पवन, पृथ्वी और जल आदि सब पहले बने और सर्व संसार की सेवा, उपकार बिना प्रतिदान और भेदभाव पापी पुण्यात्मा के, निर्धन धनवान् के प्रभु आज्ञानुसार नियम से अपने आप करते हैं तबा अब तक कर रहे हैं उन ही को देवता कहते हैं।

दूसरी सृष्टि रची जो सेवा और उपकार तो करते हैं—परन्तु व्यापारी लेन देन उनका है। जंगल और वृक्ष वनस्पति की सृष्टि प्रभु ने बनाई। वे हमारा प्राण, कार्बन और पशुओं का खाद विष्ठा लेते हैं और हमें ओषजन और फल—मेवे देते हैं। यदि हम प्राण और खाद न देवें—तो वे भी नहीं दे सकते। वे सूख जावेंगे। इसलिए यह सेवा है—पर व्यापारी सेवा है।

तीसरी सृष्टि प्रभु ने रची—उन सेवकों की, जो परतन्त्रता के कारण मन से अपनी प्रसन्नता तो नहीं, परन्तु मनुष्यों के बंधे—बंधाये सेवा करते हैं। कौन सा घोड़ा चाहता है कि मुझ पर दो मन भार भी लाद दिया जावे और ऊपर चढ़कर हांका जाता रहे। कौन बैल चाहता है कि उसे

सारा दिन हल और कुएं कोल्हू में जोते रहो। अन्त में भूसा भी दो या न दो तुम्हारी करुणा पर है। कौन गाय अपने बछड़े को छोड़कर हमें दूध देना चाहती है ? वे सब सेवक परतन्त्र रूप से दास सेवक की भान्ति सेवा करते हैं।

अब चौथी सृष्टि अन्त में मनुष्यों की बनाई। उनको भी सेवा के लिए पैदा किया। क्योंकि श्रुति भगवती कहती है—**'यज्ञो वै पुरुषः'** पुरुष यज्ञरूप ही है। अब जो मनुष्य तो पहली सृष्टि की भान्ति निष्काम सेवा करता है—वह देव बन जाता है—देवता कहलाता है।

फारसी—**"हरके खिदमत कर ओ मख़दूम शुद"**

"करके खुदरादीद ओ माहरूम शुद"

एवं व्यापारी, दुकानदारी भाव से सेवा करनेवाला जड़ बुद्धि रूप ही समझा जाता है। और शेष सेवा दास—रूप, भृत्य—रूप, विवशता से करनी पड़ती है। यह पाशविक सेवा है। इस सेवा का नाम तमोगुणी सेवा, व्यापारी सेवा का नाम रजोगुणी सेवा तथा निष्काम देवों की सेवा का नाम सतोगुणी सेवा है।

२. सतोगुणी मनुष्य—निष्काम सेवा करनेवाला सेवा करके भूल जाता है—कि मैंने किसी की सेवा की परन्तु रजोगुणी मनुष्य—व्यापारी सेवा करनेवाला यश के लिए,

बड़ा बनने के भाव से जिनकी सेवा करता है, और जैसी सेवा करता है—उसे याद रखे-रखता है। और यही स्मृति उसमें अहंकार बनाये रखती है तथा प्रतिदान चाहती रहती है। प्रतिदान न मिले—तो क्रोध-द्वेष पैदा करती है तथा प्रतिशोध का रोग पैदा करती है। तमोगुणी दासरूपिणी सेवा सेवककर्त्ता को स्मरण रहती है—पर करानेवाले को विस्मृत हो जाती है।

७—१०—३६ शनिवार ३—३० बजे लगभग
२१ आश्विन—नवमी प्रातः
(नोट २७—८—३६ से सम्बन्धित)

स्वयं यजस्व स्वयं जुषस्व

(यजु० अध्याय २३ मन्त्र १५)

प्रत्येक मानव को दो काम स्वयं करने चाहिएं।

१. अपने आत्मकल्याण के लिए भक्ति, २ दीन दुःखी की सेवा, तथा परोपकार सेवा। ईश्वरभक्ति तो करनी चाहिए अपने स्वामित्व से और सेवा करनी चाहिए धरोहर से। जो मनुष्य धरोहर को सेवा के लिए, अन्य प्राणियों के कल्याण के लिए समझता है तथा स्वामित्व को अपनी आत्मा के कल्याण के लिए समझता है—उसे सदा सुख और शान्ति प्राप्त रहती है। मेरा स्वामित्व-मुख में वाणी, आंख में चक्षु—दर्शन शक्ति, नाक में प्राण, कान में श्रवण

शक्ति, बाहु में बल आदि हैं। इनसे प्रभु—पूजा करूं—आंख से देखूं तो परमात्मा के लिए और परमात्मा को प्रत्येक परमाणु में देखूं। प्राण लूं तो प्रभु के नाम में प्रभु के लिए। सुनूं कान से कुछ भी—तो इसमें प्रभु की महिमा सुनाई दे। मेरा मनन प्रभु के लिए हो—इत्यादि, यह है भक्ति। तथा धन, जन, यौवन को प्रभु की प्रजा में लगाऊं यह है सेवा।

मति—शक्ति

२. कानों का अन्तर उत्तर और दक्षिण का है, पूर्व और पश्चिम का है, प्रकाश और तम Positive Negative दोनों का ज्ञान रखें। एक के होने से दूसरी ओर से मारा जायेगा। यदि मति तो हो और शक्ति न हो। या शक्ति हो पर मति न हो तो वह अवश्य चूकेगा। ऐसे ही माया—संसार का ज्ञान जो तम दशा है न हो, और केवल प्रभु की ओर झुकाव हो—तो तमोगुणी अवस्थाएं संसारी मोह माया का चमत्कार गिरा देगा। और संसारी ज्ञान तो हो—पर प्रभु का ज्ञान न हो—तो आवागमन में फंसा रहेगा।

आत्मविश्वास

शरीर के लिए काम करने में अपनी आत्मा पर विश्वास रखो, दूसरे के आश्रित न बनो। तथा ब्रह्मांड—संसार के

उपकार–सेवा के लिए ब्रह्माण्डपति परमात्मा पर विश्वास रखो तब सफलता होगी।

१०–४५ प्रातः

पाप प्रकट करें पुण्य गुप्त रखें

१. पुण्य प्रकट करने से मान क्षीण होता है और पुण्य का फल भी। परन्तु पाप प्रकट करने से मान वृद्धि होती है–तथा पाप का फल क्षीण हो जाता है। पुण्य छिपाने से आत्मिक बल बढ़ता है–अन्तःकरण पवित्र होता है। परन्तु पाप छिपाने से आत्मिक बल क्षीण होता है–अन्तःकरण मलिन होता है।

वाणी का महत्त्व

२. वाणी ब्राह्मण का प्राण है–ऐसा शास्त्रों का कथन है। संसार की प्रत्येक वस्तु को दूसरे पर प्रकट करनेवाली, सारे शरीर में एक वाणी ही है, और प्रभु की महिमा तथा प्रभु के ज्ञान को प्रकट करनेवाली भी एक वाणी ही है। प्रभु ने आदि–सृष्टि में जो प्रथम सम्बन्ध मनुष्यों का अपने साथ और अन्य सृष्टि के साथ जोड़ा, वह भी वाणी का ही विषय बनाया। शरीर की रक्षा और बल बढ़ाने के लिए वाणी का सम्बन्ध समस्त खाद्य–पदार्थों से जोड़ा तथा आत्मिक उन्नति के लिए शब्द द्वारा अर्थज्ञान सहित पवित्र ऋषियों के पवित्र अन्तःकरण में अपना अमृत वेद

ज्ञान प्रदान किया। जो प्रभु की वाणी के नाम से प्रसिद्ध हुआ। फिर मनुष्य की वाणी द्वारा ही सर्वप्रथम आकाश में इतर–प्राणियों के लिए प्रकट हुआ। इसलिए वाणी ब्रह्माण्ड का प्राण कहलाती है। प्राण से जीवन मिलता है। वाणी द्वारा भी शरीर और आत्मा को जीवन मिलता है। शरीर को रसों से आत्मा को वेदज्ञान से बल मिलता है।

३ बजे मध्याह्नोत्तर

घटनाओं का प्रभाव-सत्संग की आवश्यकता

प्रत्येक मनुष्य अपनी आयु भर में जितनी घटनाएं देखता या सुनता है अथवा उसके अपने साथ बीतती हैं या अन्य प्राणियों के साथ होती हैं–उन पर आचरण नहीं कर सकता। कारण यह है कि सब बातों और घटनाएं–चार अवस्थाओं में विभक्त हो जाती हैं। बहुत–सा भाग ऐसा होता है जो लुप्तसा हो जाता है, और कुछ भाग ऐसा होता है–जो सुप्त हो जाता है, और कुछ गुप्त रह जाता है, तथा बहुत ही थोड़ा रुपये में पैसे के लगभग, या इससे भी कम सामने रहता है। सो जो तो सामने रह जाता है–उसी का प्रभाव रहता है, एवं उसी से प्रभावित होकर मनुष्य तदनुसार आचरण करने का प्रयत्न करता है, और उसमें सफल हो जाता है। पर जो लुप्त हो जाता है, वह उसके लिए और अनदेखे के समान हो जाता है।

यदि फिर कभी कोई सुनाये, तो नया ही प्रतीत होता है। तब मनुष्य यही कहता है कि ऐसी बात आज मैंने सुनी है। पहले कभी नहीं सुन या देखी। तथा जो सुप्त हो जाती है वह काल–पश्चात् वैसी बात या घटना देखने या सुनने पर, कह उठता है, कि यही बात पहले भी, दो वर्ष हुए–उन्होंने कही थी। या अमुक पंडित जी कह गए थे। एवं बात जो गुप्त हो जाती है–वह जाकर गुप्त संस्कार बना देती है। तथा जब कभी दिन अच्छे आये हों–तो प्रभु कृपा से अन्तरात्मा में वह गुप्त रीति से जागृत होकर उसका पथ–प्रदर्शन करती है। इसलिए मनुष्य बड़ा अशक्त है। इसे सुप्त को जगाने के लिए सत्संग की आवश्यकता है।

८–१०–३६ रविवार ४–२०
२२ आश्विन–दशमी प्रातः

सेवा का फल मेवा

सेवा का फल मेवा है। कौनसा मेवा ? प्रसन्नता आनन्द, आह्लाद सर्व संसार के प्राणियों को प्रसन्न करने के लिए जो सेवा की जाती है, उसका नाम है–कर्म तथा अपने आप आत्मा को प्रसन्न करने के लिए जो सेवा की जाती है, उसका नाम है–ज्ञान। दूसरे प्राणी कर्म के बिना प्रसन्न नहीं हो सकते। स्वयं बिना आत्म–ज्ञान

प्रसन्न नहीं हो सकता। परन्तु प्रसन्नता है परमात्मा से। तथा वह तब मिलती है—जब प्रभु प्रसन्न हों। प्रभु की प्रसन्नता होती है—भक्ति से। इसलिए ज्ञान, कर्म, उपासना, तीन प्रकार के यज्ञ हैं। जिनके करने से संसार की प्रसन्नता होती है—केवल एक सेवा से नहीं। पर मनुष्य यह विचार रखे कि मुझे क्या आवश्यकता है, मैं संसार के प्राणियों को प्रसन्न करने के लिए प्रभुभक्ति करके प्रसन्नता प्राप्त करूं। दोनों ओर कष्ट उठाऊं। मनुष्य विवश है, प्रत्येक मनुष्य अपनी प्रसन्नता स्वाभाविक चाहता है तो—अपनी प्रसन्नता पाने के लिए प्रभु से मांगना पड़ता है, वह प्रार्थना हो जाती है और समीप जाने से उपासना बन जाती है। परन्तु प्रभु कभी प्रसन्नता देते ही नहीं, यदि मनुष्य केवल अपने लिए ही मांगे। कारण यह है कि मनुष्य के अन्दर इतना स्थान नहीं है कि प्रभु की हुई हुई साधारण तनिक सी सच्ची प्रसन्नता को टिका सके और संभाल सके। जबकि वह मनुष्य प्रकृति के पदार्थों से जो प्रसन्नता प्रभु की छाया रूप से पाता है—वही अन्दर नहीं समा सकती। फूटकर बाहर मुख पर आजाती है तथा मनुष्य इतना प्रसन्न होता है कि दूसरा देखनेवाला कहता है "अजी, आज तो आप बड़े प्रसन्न प्रतीत होते हैं। आपके मुख से प्रसन्नता टपक रही है।" तो प्रभु की

वास्तविक प्रसन्नता पाकर मनुष्य कैसे न उछलेगा ? नदी में जब बाढ़ आती है—तो वह दो किनारों में कभी नहीं बंधी रह सकती। वह उछल—उछल कर दूर—दूर तक की भूमि को सींचकर हराभरा कर देती है। सूर्य नारायण की एक किरण निकलती है— वह कैसे एक स्थान में बन्द हो सकती है—वह तो सर्व ब्रह्माण्ड में फैल जाती है। ऐसे ही प्रभु के प्यारे भक्त के अन्तःकरण में प्रभु की प्रसन्नता आती है, तो वह भी सर्व संसार के प्राणियों में बांटने लगता है। इसलिए प्रभुभक्ति की जाती है। महापुरुषों के चरणों में हजारों लोग दौड़े जाते हैं—केवल दर्शन के लिए। उन के दर्शनों से लोगों को प्रसन्नता हाथ आती है। महापुरुष ज़रा दृष्टिपात लोगों की ओर मुस्कराहट से करें और कुछ भी न बोलें—तो सब लोग मुस्करा पड़ते हैं—प्रसन्नता से। नन्हें शिशु को देख जब वह मुस्कराता है तो देखनेवाले स्वयं ही मुस्करा पड़ते हैं और प्रसन्नता से फूले नहीं समाते।

२. परन्तु इस कर्म ज्ञान और उपासना में तीन वस्तुएं बाधा होती हैं। १. बुद्धि में अभिमान गर्व आजाने से ज्ञान आत्मज्ञान नहीं मिल सकता। २. और हृदय में चिन्ता आजाने से प्रभुभक्ति नहीं हो सकती है। ३. तथा मोह की शृंखला से पांव बंधकर कोई कर्म करने के लिए चल नहीं सकते। ये तीन बाधाएं हैं—जिनसे संसार बंधा हुआ है।

निष्फल काम

३. मनुष्य को संसार में बहुत काम करने हैं—और वह करता भी है। परन्तु बहुत से निष्फल और विफल चले जाते हैं—कौड़ी भर सफल होते हैं। उनका कारण यह है कि मनुष्य नहीं जानता—कि किस समय कौनसा कार्य करना चाहिए, बस यही बड़ी भूल है।

६—१०—३६ सोमवार ४ बजे प्रातः
२३ आश्विन एकादशी

शिकायत-मन नहीं टिकता

उपासना के समय बाहर की इन्द्रियों के कार्य बन्द हो जाने पर भी, मन में सब विचार आते, और आकार बनते हैं इसका कारण यह है कि मन और बुद्धि सदा बाहर दूसरी इन्द्रियों के विषयों में व्यभिचारियों की भान्ति घूमते रहते हैं। जब वे द्वार बन्द कर दिये गए—तो उनका स्वभाव है—हेरा—फेरी का। वे स्वभाववश सब आचार और विचार सामने लाते हैं। ज़ब तक मन बाह्य—साधन (इन्द्रियों के बहिर्गमन) को न रोकेगा, तब तक अन्दर भी वह स्थिर न हो सकेगा। उसके स्वभाव को मोड़ना चाहिए।

७—२५ प्रातः

शिकायत-मन नहीं लगता

लगभग प्रत्येक मनुष्य नर या नारी यह शिकायत करता सुना जाता है कि 'भक्ति या जप के समय मन नहीं लगता, नहीं टिकता।' तो इससे स्पष्ट प्रकट है कि भक्ति का सम्बन्ध मन से ही है। जब तक मन किसी बाह्य—इन्द्रिय में टिकता है तो समझो वह दास है। तब तक दास स्वामी तक पहुंच नहीं सकता। कोई आंख के द्वारा—बाहर किसी आकार में मन को टिकाता है। कोई कान के द्वारा शब्द में टिकाता है। तो यह टिकना बाहर का ही है। ऐसी बाह्य—एकाग्रता, यदि उत्तम कोटि की हो जाये—तो एक बाजीगर ही समझा जावेगा इससे अधिक मूल्य नहीं। मन जब अपने सहारे अन्दर टिकेगा—तो बस अपने आप को देखेगा, और पावेगा। अपना आप स्वामिपना है—तब स्वामी बन जावेगा।

१०—५ बजे प्रातः

प्रभु कहां मिलेंगे ?

प्रश्न— प्रभु कहां मिलेंगे ?

उत्तर— प्रभु सर्वव्यापक हैं—सब जगह मिल सकते हैं। पर सब स्थानों के साधन भिन्न—भिन्न हैं। और वे योग के अंगों में से होंगे। नीचे यदि मनुष्य, प्रभु को पाना

चाहे–तो तप करे और घोर तप करे। मध्य में पाना चाहता है–तो महान् विशाल और विश्वप्रेमी बने। ऊपर पाना चाहे तो सत्य का उपासक बने। तथा यदि सर्वत्र पाना चाहे–जिधर दृष्टि डाले, या जिधर पग धरे और वहां ही पाना चाहे–तो ईश्वरप्रणिधान, ईश्वरविश्वास अपना–आप ईश्वर–समर्पण कर देवे। तप कैसा हो ? पांच अग्नि तपावे और स्वयं बीच में बैठे, और किसी भी अग्नि की आग उसे न सतावे, उस पर प्रभाव ही न करे। किसी अग्नि से उसे पसीना न आवे, वह पसीज न जावे। वे पांच अग्नियां–ये पांच विषय हैं 'काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार। इन्हीं विषयों में रहे, और विषयों का प्रभाव न हो। जैसे महाराज जनक हुए। आजकल कई साधु तप करते हैं। परन्तु तप के स्वरूप को नहीं समझ सके। प्रभु नीचे मिलेंगे–सिर नीचा करने से। उन्होंने टांगें ऊपर और सिर नीचे कर दिये (शीर्षासन)। उससे प्रभु कैसे मिलें। इससे तो शरीर रोगी हो जाता है। प्रकृति–नियम के विरुद्ध आचरण है। सिर नीचे करने का आशय तो अभिमान को नीचा कर देना था, अहं को नीचे दबा देना था। नम्रता आजाती। अब ऐसा तप करे–कि कोई किसी प्रकार उसे रोष दिलाये भी, तो उसे अहंकार न उपजे। यह था तप, सिर नीचा करने का। और पांचों ओर जो

अग्नि तपाते हैं–और स्वयं बीच में बैठ जाते हैं–इस से भी प्रभु नहीं मिलेगा। ऊपर और नीचे, दाएं और बायें और मध्य में–पांच विषयों की अग्नि थी–जिसे दग्ध करना था। कोई हाथ ऊपर खड़ा करके सुखा देता है–इसे भी तप जान लिया है। परन्तु इसका यह आशय न था। आशय तो यह था कि अपनी इन्द्रियों को अपने इतना वश में कर लिया हो कि इन्हें अपने आप विषय की ओर क्रिया करने की शक्ति ही न रहे, सूख जावें। नेत्र की भान्ति वे काम करें।

११–१०–३६ बुधवार ७ बजे लगभग
२५ आश्विन, चतुर्दशी प्रातः

मनुष्य लोक-प्रिय कैसे हो ?

१. प्रत्येक मनुष्य की आत्मा स्वभाव–सिद्ध चाह रखती है कि सब मनुष्य उसकी प्रतिष्ठा करें, चाहे प्यार करें, सर्वप्रिय बन जाए। इसीलिए वह अपनी बनावट करता है। शरीर और वेश को सुन्दर बनाकर वह अपने को सर्वप्रिय बनाना चाहता है। जो कि बड़ी भूल है। ऐसे मनुष्य कभी पूर्ण सर्वप्रिय नहीं बने। शुभ गुण–कर्म–स्वभाव से ही मनुष्य सर्वप्रिय होता है।

२. वही सर्वप्रिय बन सकेगा–जिसका जीवन तपोमय होगा। तप करनेवाला यदि अपना आराम और आराम का

समान दूसरों की अपेक्षा अधिक चाहता है–तो तप (उसका) नकली होगा। तप के लिए आवश्यक है–'सन्तोष और शौच' (पवित्रता पवित्रभाव), बिना विशेष उद्देश्य के मनुष्य तप में सिद्धि को प्राप्त नहीं कर सकता। तप करनेवाले में गुण, कर्म और स्वभाव पृथ्वी जैसे चाहिएं।

६–२०

मानव आत्मा की दो शक्तियां

मानव आत्मा को दो शक्तियां या यन्त्र मिले हैं–संसार में विचरण करने के लिए एक शरीर और दूसरा अन्तःकरण। शरीर के सजाने में व्यय अधिक और समय कम लगता है। परन्तु मन (अन्तःकरण) के सजाने संवारने में व्यय बहुत कम और समय बहुत अधिक लगता है। शरीर के सज जाने पर आत्मा सज नहीं सकती। परन्तु अन्तःकरण सुसज्जित होने पर आत्मा अवश्यमेव सुसज्जित हो जाती है। लोग भूल यह करते हैं कि व्यय और समय का मूल्य नहीं समझते। दोनों व्यर्थ जाते हैं। परन्तु साधक पैसे की भी परवाह करता है–और समय का तो उससे अधिक ध्यान रखता है। क्योंकि पैसा तो वह स्वयं कमाता है। पैदा करता है, परन्तु समय उसका निजी नहीं, प्रभु पैदा करता है। अतः जो प्रभु की दात को अपनी कमाई से अधिक मूल्यवान् समझता है, वही सिद्धि को प्राप्त होता

है, निर्जीव वस्तुओं के सेवन से। सिर सुसज्जित होता है–तेल और कंघी से। आंख काजल और सुर्मा से और शरीर परिधान (कपड़ों) से। परन्तु मन सुसज्जित होता है–चेतन शक्ति की सेवा से।

१३–१०–३६ शुक्रवार ४ बजे प्रातः

पुरुषार्थी का चिह्न

समय या काल का मनुष्य के शरीर में प्राण पर अधिक प्रभाव है। यह काल प्राण को ही खाए जा रहा है, जो शरीर में सर्वाधिक बलवान् वस्तु है। कई तो ऐसे हैं, जो कहते हैं–'हमें तो समय ही नहीं मिलता।' और कई ऐसे हैं, जो कहते हैं–'हमारा समय ही नहीं कटता।' जिन्हें समय नहीं मिलता, वे समय को बढ़ा नहीं सकते, न उनके लिए बढ़ सकता है। तथा जिनसे समय नहीं कटता, वे घटा नहीं सकते, न उनके लिए घट सकता है। तो भाव यह है कि समय न घटता है, न बढ़ता है। यह पूर्ण ही है। जिन को समय मिलता नहीं (जिनको समय पूरा नहीं पड़ता) वे तो कृपण हैं, तथा जिनका कटता नहीं–वे अतिव्ययी हैं। मनुष्य वही चतुर है–जो इस समय (पूर्ण) में काम (पूर्ण) कर लेवे। वही पुरुषार्थी कहला सकता है।

१४–१०–३६ शनिवार ५–५ मध्याह्न
२८ आश्विन, द्वितीया

जप तप व्रत में पतन, कब ?

प्रत्येक मनुष्य (साधक) का जप–तप–व्रत भी गिरता है–तो वह थोड़ेसे लोभ से। चाहे वह लोभ आंख का हो, या जीभ का, या किसी अन्य इन्द्रिय का। इस थोड़ी बात का विचार जो अधिक करता है, वही इस संसार में बच सकता है। थोड़ा स्वाद के चक्र में आया नहीं कि अपनी कमाई हीरों की, कौड़ी के बदले दे बैठता हैं

१८–१०–३६ बुधवार ४ बजे प्रातः
२ कार्तिक षष्ठी

दोष और दोषी का सुधार कैसे ?

जब किसी को उसका दोष कहना है–तो सुधार–भावना के रूप में, यदि शान्त मस्तिष्क से कहा जाये, तो सुननेवाला दोषी शान्त मन से सुनकर कृतज्ञ होता है। यदि अशान्त मस्तिष्क मन से कहा जावे, तो दोषी भी अशान्त मन से सुनकर प्रतिकार और आत्मरक्षा (Defence) करेगा। सुधार नहीं होगा।

२. दोष दो प्रकार के होते हैं– एक तो वे जिनका मनुष्य को भय नहीं होता, लोगों में अपमान नहीं होता। उनको छोड़ने के लिए जब तक ग्लानि, घृणा न हो, त्याग

नहीं हो सकता। यदि कोई श्रेष्ठ पुरुष बनना चाहता है, तो उन दोषों अवगुणों को स्मरण करके घृणा करे और त्याग देवे।

दूसरे दोष वे हैं—जिनको मनुष्य छिपाकर करता है, प्रकट साहस नहीं कर सकता। इससे पतन होता है—आत्मा का। उनके निवारण के लिए मनुष्य को रुदन, पश्चात्ताप करना चाहिए तब वे छूटते हैं। पहले का प्रायश्चित्त करने से बुद्धि शुद्ध होती है।

१६—१०—३६ बृहस्पतिवार ७ बजे
७ कार्तिक, सप्तमी

क्रोध हिंसक घातक है

आध्यात्मिकता के द्वार की चाबी दयालु के हाथ में है। जिसे मुसलमान रहमान (रहीम) और हिन्दू दयालु कहते हैं। अतः जिस मनुष्य ने इस द्वार में प्रविष्ट होना है, उसे तो अहिंसा और दया का पुतला बनना चाहिए। दया का स्थान जीभ है, यह हिंसक न हो। परन्तु यह अनुवादक है—मन की। इसलिए यह पूर्ण अहिंसक तभी हो सकता है, जब मन हिंसक न हो। मन और वाणी के एक होने से मनुष्य का कर्म भी वैसा ही होगा। इस द्वार से परे रखनेवाला 'क्रोध' है। जो कई रूप—रूपान्तरों में प्रकट हुआ करता है। शिशु जो बिलकुल असमर्थ है—उसके

क्रोध का चिह्न रोना है। और कुछ समर्थ बालक के क्रोध का चिह्न रूठना और सूज जाना है—मां से, भाई से, बहन से, पिता से। बालक तो क्रोधित होता है—एक प्रकार से। वह तब जब अपनी इच्छा से विपरीत स्थिति पाता है। और युवक क्रोधित होता है—दो स्थितियों में। एक तो तब जब उसकी इच्छा के प्रतिकूल हो। दूसरा तब जब अपनी बुद्धि के विरुद्ध पावे। क्रोध ही एक शस्त्र है हिंसा का। मन के क्रोध का चिह्न द्वेष और ईर्ष्या हैं—(हार्दिक जलन, प्रतिशोध भावना, गम्भीर घृणा) और वाणी के क्रोध के चिह्न हैं, कठोरता, कटु वचन। कर्म का क्रोध—प्राण लेना है। जितने भी विषय काम, लोभ, मोह, अहंकार आदि हैं—उन सबका शस्त्र क्रोध ही है। उदाहरणतः एक मनुष्य कामातुर होकर किसी परस्त्री में आसक्त होता है—और बुलाता है तथा उस स्त्री का पति इसके लिए रोड़ा है—तब उसे कामातुरता में इस पर क्रोध आता है। जब–जब वह उस स्त्री के पास आना चाहता है या बुलाता है, तो उसका पति विद्यमान होता है, तब उस रोड़े को निकालने के लिए उसके मन में घृणा (द्वेष) की आग भड़कती है, और वह क्रोध में आकर हाथ में तलवार से (ऐसा कर्म करता है) उसे जान से मार डालता है।

क) एक मनुष्य धन सम्पत्ति के लोभ में अपने भाई या भतीजे को क्रोध में आकर ईर्ष्या से मार डालता है। (ख) कई देवियां अपनी सन्तान के मोह में आकर दूसरी देवियों से लड़ पड़ती हैं। क्रोधित होकर प्रतिशोध (बदला) लेती हैं। (ग) अभिमान तो क्रोध का मूल कारण होता है। एक प्राइमरी स्कूल का मुख्याध्यापक (पुराने युग की बात है) सैर कर रहा था। एक बहुरूपिया नीच जाति का मिला। उसने सलाम किया—परन्तु मुख्याध्यापक ने उपेक्षावृत्ति से ध्यान न दिया। नीच जानकर सलाम का उत्तर न दिया। उस नीच ने मन में ठानी—कि अब इससे ही सलाम करवाऊंगा। और अपनी घोड़ी इससे पकड़वाऊंगा। अंग्रेज गोरे का रूप बनाकर बड़ी घोड़ी पर चढ़कर स्कूल में आगया। लड़के दौड़ते हुए मुख्याध्यापक को कहने लगे—'साहब आगया है।' मुख्याध्यापक बाहर आया। सचमुच साहब जानकर उसे सलाम—आदाब अर्ज किया, पर बहुत झुककर। और घोड़ी बलवती थी—उछल रही थी। मुख्याध्यापक ने घोड़ी की लगाम को नीचे से पकड़ कर थामा। जैसे नौकर थामा करते हैं। वह बहुरूपिया गिट—पिट पढ़कर चला गया। कहा—"वैल मास्टर, हम जाता है।" तब मुख्याध्यापक

ने तुरन्त स्कूल बन्द किया और डाक–बंगले में जा उपस्थित हुआ। पता लगा, न कोई साहब आया है, न आनेवाला है। थाने पर पता किया। पर कहीं साहब का पता न लगा। अन्त में यह पता लगा कि वह, वही नीच जाति का बहुरूपिया था। मुख्याध्यापक को क्रोध आगया कि इस नीच ने मुझसे सलाम कराया। आनरेरी मैजिस्ट्रेट के पास चला गया, और सब वृत्तान्त सुनाया। आनरेरी मैजिस्ट्रेट साहब ने उसे बुलाया। उसने सारी कथा सुनाई–कि मैं बहुरूपियां हूं–इसलिए किया था। मुख्याध्यापक महोदय ने कहा–कि "मेरी भारी अप्रतिष्ठा की है–इसे अवश्य हवालात देनी चाहिए। चाहे एक घण्टा भी हो।" आनरेरी मैजिस्ट्रेट ने उसे हवालात में भेज दिया। अहंकार ने क्रोध में आकर उससे प्रतिशोध (बदला) लिवाया। भाव यह है कि क्रोध भी ऐसा बुरा शस्त्र है–जो मनुष्य को पतित करनेवाला है।

२०–१०–३६ शुक्रवार ७।। बजे प्रातः
४ कार्तिक अष्टमी

ईर्ष्या और द्वेष, मनुष्यों में क्यों ?

१. जब मनुष्य कोई बात किसी की अपनी इच्छा के प्रतिकूल पाता है–तो उसे उससे ईर्ष्या हो जाती है। तथा जब बुद्धि के (विचार के) प्रतिकूल पाता है–तो द्वेष (घृणा) हो जाती है।

तीन प्रकार के क्रोध

तीन प्रकार का क्रोध होता है—सात्त्विक, राजसिक और तामसिक। जैसे राजा का प्रजा पर कुपित होना तामसिक है। वह दण्ड से, बन्दूक, तोप और बम्ब से बदला लेता है। माता का पुत्र से क्रोध रजोगुणी होता तो समझाने के लिए है—पर इसमें अपना स्वार्थ छिपा होता है। तीसरा गुरु का शिष्य से क्रोध करना—सात्त्विक होता है। केवल शिष्य के आत्म—सुधार या आत्म—रक्षा के लिए होता है।

प्रकृति के गुण—सत् रज तमः, परमात्मा के गुण ब्रह्मा, विष्णु, शिव

प्रकृति में सत्, रज, तम हैं और परमात्मा में भी सत्—रज—तम हैं। परन्तु दोनों में बड़ा अन्तर है। प्रकृति का तम तो नाश और रज—उपकार—पालन, और सत्=साम्य अवस्था होती है। परन्तु परमात्मा का तम (शिव) न्याय, और रज (ब्रह्मा) उत्पत्ति करना, और सत् (विष्णु) पालन करना होता है। जीवात्मा में तीनों गुण या तो प्रकृति से आवें या परमात्मा से। जिसमें जिसके गुण आवेंगे—वैसा वह बन जावेगा।

२२–१०–३६ ३।। बजे प्रातः

६ कार्तिक, विजयदशमी

दशहरा का रूप

जाति के उत्थान के लिए बालकों को दृश्य द्वारा और युवकों में उत्साह और उमंग पैदा करने के लिए पूर्वज महापुरुषों ने स्थान और दिन नियत किये। जिनके द्वारा संगठन हो जाया करे। उस स्थान का नाम तो तीर्थ और दिन का पर्व या त्यौहार बन जाता रहा। जाति के बालक और वृद्ध, बालिकाएं और देवियां सब श्रद्धा से इसका स्वागत करते हैं। आज 'दशहरा' है। हिन्दू जाति में राम की विजय और रावण का नाश दिखाया जाता है। लाखों वर्षों से यह दृश्य जाति के सम्मुख उपस्थित होता है। परन्तु राम के पुजारी तो न बने, हां ! आराम के पुजारी सब बन गए हैं। राम–इच्छुक (राम की चाह करनेवाला) कोई विरला, और आराम–इच्छुक सारा संसार दीखेगा। फिर जो व्यक्ति या जाति, या देश आराम चाहेगा–वह राम को केसे अपनाएगा ? 'दशहरा' शब्द दो–सेहरा' से बना हुआ है। राम को दो प्रकार का सेहरा प्राप्त हुआ। एक तो उसने अहंकार का नाश किया, और दूसरा लोभ का त्याग किया। (१) रावण को मारा, (२) सीता को जीता पर राज लंका का विभीषण के अर्पण किया। स्वयं न

लिया। दूसरा सेहरा—(१) पिता की आज्ञा—पालन का प्राप्त किया। (२) दूसरा फिर राज का सेहरा उसे मिला।

रावण के दस सिर बनाए जाते हैं। वह दस विद्याओं (ज्ञानों) का स्वामी था। चार वेद और छः शास्त्र वह जानता था। पर ग्यारहवां सिर उसका हठ का लगाते हैं।

आध्यात्मिक रूप में—राम तो 'आत्मा' है। भगवती सीता 'बुद्धि' है—और रावण 'अहंकार' है। अहंकार ही बुद्धि और आत्मा के मध्य में आवरण है। अहंकार हर ले जाता है—बुद्धि को, अपनी कैद में रखता है। जब आत्मा इस अहंकार का नाश करती है—तो बुद्धि को पुनः प्राप्त करती है। फिर 'राम—राज्य' कहलाता है, और खुशियां होती हैं। और यही वास्तविक विजय है।

हिन्दू जाति राम—राम तो कहती है—पर राम को चाहती नहीं है। स्वरूप में राम तो बनाती है—पर उसे मनाती नहीं। लीला में राम को सजाती है—पर रिझाती नहीं। जब स्वयं ही राम के बनानेवाले होगए—तो फिर किसे मनावें और किसे रिझावें ? प्रत्येक विजय के लिए सबसे प्रथम विश्वास की आवश्यकता होती है। द्वितीय—बल की। तृतीय—त्याग की। चतुर्थ—तप की। पंचम—संगठन की। षष्ठ—आज्ञा-पालन की। सप्तम—ज्ञानी नेता (ड्राइवर) की, अष्टम—पुरुषार्थी-गार्ड (रक्षक) की आवश्यकता होती

है। जहां ये आठों पूरे हों—वहां अवश्यमेव विजय प्राप्त होती है। वह चाहे संसारी हो, या आत्मिक हो। आध्यात्मिक—रूप में दस इन्द्रियों पर (जो दस आहार लेनेवाली हैं) वश पाने के लिए—विजय पाने के लिए, ईश्वर—विश्वास हो। ब्रह्मचर्य संयम का बल हो। त्याग और तप का जीवन हो। अर्थात् स्वाद का त्याग और आई—बाधा के लिए तप की शक्ति हो। इन्द्रियों का संगठन और वेद—आज्ञा का अनुपालन, गुरु—पूर्ण, और वायुमण्डल पुष्टि देनेवाला हो, तब योग सफल हो, और मन जीता जावेगा।

२३—१०—३६ सोमवार ३—२० दोपहर
७ कार्तिक, एकादशी

दो प्रकार का रुदन

किसी व्यक्ति, या जाति (समाज) की पतित अवस्था को देखकर रो पड़ना—विशालता और नम्रता और लचकीलेपन का प्रमाण है। किसी कष्ट, विपत्ति, दुःख में दुःखी होकर रो पड़ना—भीरुता का चिह्न है। और प्रभु—दरबार में अपने पाप के पश्चात्ताप में रोना वीरता का काम है।

लज्जा और अभिमान का अन्तर

२. बड़े आदमी जिस शुभ कार्य के करने में शर्माते

और लजाते हैं, वह वस्तुतः उनका अभिमान होता है। पर छोटा आदमी जब शर्माता है, तो वह वस्तुतः भय और डर होता है। लज्जा और शर्म तो वह है जो बुरे कर्म करने में आकर न करने देवे। और अच्छे कर्म करने में आकर करा देवे।

श्रद्धावान् लभते ज्ञानम्

३. गीता में महाराज कृष्ण भगवान् ने उपदेश दिया– **'श्रद्धावान् लभते ज्ञानम्'** प्रथम तो मैं श्रद्धा को कुछ और वस्तु समझता रहा–परन्तु आज अचानक ही एक स्वरूप दृष्टिगत हुआ–और सेवादार के रूप में इसका वास्तविक अर्थ समझा गया–कि यहां श्रद्धा का अर्थ है–सेवा, निष्काम सेवा। सच्ची सेवा से ही ज्ञान (ब्रह्मज्ञान) की प्राप्ति होती है। इसके बाद तुरन्त कह रहा हूं–देखो भाई ! सेवा बड़ी चीज है। इससे भी ब्रह्मज्ञान की प्राप्ति हो सकती है। सच्ची सेवा तुम में नहीं है। इसे प्राप्त करो, पैदा करो।

एक मनुष्य जुवारी था, शराबी, कबाबी, मांसाहारी और वेश्यागामी भी था। पर उसमें दीन–दुःखियों की सेवा और साधु–महात्माओं की सेवा का अतीव भाव था एक साधु कहीं बीमार था। उस महान्–व्यसनी को पता लगा तो वह साधु के पास गया, और उसकी सेवा करने लगा। खूब सेवा करता। दवा ले आता। अपने घर से

रोटी ले आता। तन दबाता था। दबाते समय कभी तो उसका ध्यान घर पर चौके में जा पड़े—कि अहा ! क्या सुन्दर देग सुन्दर कबाब की बनी हुई है। कभी किसी दिन शराब के प्याले (काल्पनिक) पी रहा है। कभी वेश्या के घर गमन कर रहा है। और कभी अपने साथियों के साथ जूआ खेल रहा है। इधर सेवा करता है—उधर मानसिक दौड़ भी हो रही है। कई दिन सेवा करता रहा। दिन भर वह साधु की सेवा करता। कभी कोई और जाता—तो शहर चला जाता, और अपना दाव लगा आता। अन्यथा वहां ही रहता (सेवा में) ऐसे कठोर व्यसन होने पर भी—सेवा न छोड़ता। और बहाना न करता। रात्रि को साधु उसे कह देता—जाओ ! बेटा ! घर जा सोओ। सवेरे आ जाना।' वह प्रातः ही आजाता। एक रात साधु ने उसे कहा—जाओ, रोटी खा आओ। फिर आ जाना। मुझे रात को तो आवश्यकता नहीं पड़ती। हां ! सवेरे पांच बजे आवश्यकता होगी।' वह मनुष्य चला गया। रोटी खाई। देर हो गई। विचार किया—'अब तो साधु को नींद होगी। जगाने में उनको कष्ट होगा। मैं ठीक पांच बजे ही पहुंच जाऊंगा।' रात्रि को साधु ने स्वप्न में क्या देखा ! कि वही मनुष्य रोटी लाया है कपड़ा उतारकर जब थाली आगे रखी है—तो साधु खाने लगा। इसमें मांस था। साधु ने

कहा–'यह क्या है ?' सोचा–कि यह इतना सेवादार भक्त है–कभी मांस नहीं लाया। मैं भी नहीं खाता। यह मांस नहीं होगा। कुछ और ही सब्जी होगी ? साधु सन्देह में भी था। पर पूछ न सका। खा गया। अभी खा रहा था–कि एक प्याला सामने रखा देखा। साधु ने उठाया–घूंट भरा। कड़वा तो लगा–पर सोचा कि यहां पानी कड़वा होगा। या मैं रोगी हूं–इसलिए ऐसा लगता होगा। पी गया। इसके बाद वेश्या सामने आगई–देखकर चकित होगया। ऐसी सुन्दर स्त्री और चमकीली–भड़कीली वेश–भूषा धारण किये हुए ठाट–बाट से नखरे कर रही है। साधु का हृदय कांप उठा कंपायमान–पसीना–पसीना हो गया। ऐसे डरा–जैसे जंगल में डाकू–चोर से पथिक डरता है। भय से रो पड़ा। और मुख से निकला–प्रभो ! मुझे बचाओ–बचाओ। मुझे कोई मारना चाहता है।" उधर से वह मनुष्य ठीक समय पर अन्दर प्रविष्ट हो रहा है। आवाज को सुनकर घबरा गया 'कि आया तो मैं ही हूं। छोटी सी कुटिया है। दिखाई कोई देता नहीं। कौन मार रहा होगा ? कहने लगा–'भगवन् ! सेवक तो उपस्थित है। आज्ञा कीजिए–कौन मार रहा है ?' साधु की जाग खुल गई। उठा। सेवक ने पसीना देखा, आंसू देखे, पोंछे। नमस्कार किया। पानी लाया। तन दबाया और

पूछा–'महाराज ! कोई स्वप्न था–या सचमुच कोई दुष्ट आया था तब साधु ने सारा वृत्तान्त सुनाया। सेवक ने कहा–'कहाराज ! क्षमा करो। स्वप्न तो मिथ्या होते हैं।' साधु अभ्यासी था। कहा–भाई ! प्यारे ! यह स्वप्न सच्चा है। तुम बतलाओ–तुम में इन में से कोई व्यसन है ?' वह लज्जित होगया। सिर नीचा किया और बोला–'महाराज ! ये सब के सब मुझ में हैं। और मैं आपके पास बैठे–बैठे मानसिक खेल कर लिया करता रहा हूं।" साधु ने कहा, 'बेटा ! तुमने हमारी बड़ी सेवा की है। पर सेवक के केवल मानसिक भावों ने अपनी सेवा में मुझ पर इतना प्रभाव डाला है–तो तुम्हारा क्या हाल होगा ? सेवक फूट–फूट कर रो पड़ा। वह इतना रोया कि फिर व्यसन का रूप सामने ही न आया। जैसे किसी का पुत्र सामने मर जावे और उस समय उसे वैराग्य के अतिरिक्त कुछ न सूझे। उसे सब कुछ भूल जाता है। यही अवस्था हो गई। सेवक ने सेवा में ही वास्तविक मार्ग पाया–और साधु ही बन गया। गृहस्थ में रहते ही साधु–सिद्धि प्राप्त कर ली।

१५–१०–३६ बुधवार ४ बजे प्रातः
६ कार्तिक–द्वादशी (लगभग)

सेवा का प्रभाव

वायु और जल, जब तक इनमें शुद्धि–दिव्य गुण रहते

हैं—कोई मिश्रण नहीं होता, तब तक सब शरीरों को अरोग—सुखी रखते हैं। पर जब उनमें दुर्गन्धि मिल जावे—जो सेवन करनेवालों को रोगी और विकारी बना देते हैं। ऐसे ही सेवा करनेवाला यदि बिना किसी लाग पलेट के—निष्काम सेवा करे तो सेवा करानेवाले का सूक्ष्म—शरीर अरोग रहता है परन्तु जब सेवा करनेवाले के भावों में स्वार्थ या अन्य परिवर्तन आजावे—तो वैसा ही सेवा करानेवाले के मन में विकार पैदा हो जाता है।

२८—१०—३६ शनिवार ४।। बजे प्रातः
१२ कार्तिक पूर्णमासी (लगभग)

मन की साधना : संसार से उलटी

समस्त पदार्थों का उठाना परिश्रमसाध्य होता है परन्तु (उनके) गिराने में देर नहीं लगती, न श्रम करना पड़ता है। परन्तु मन को गिराने अर्थात् उतारने में और चढ़ने में, दोनों में बड़ी कठिनाई और वीरता का काम है। मन संसारी मायावी विषय के नशे में—ऊपर चढ़ा हुआ है। इस नशे से नीचे करना (उतारना) बड़े वीर का ही काम है इसलिए उठाना तो है—सब वस्तुओं का कठिन। अतः मन बड़ा भारी है।

२६—१०—३६ रविवार ७।। बजे प्रातः
१३ कार्तिक, कृष्ण—प्रतिपदा (लगभग)

अति मन्दभाग्य : सत्संग में प्रमादी

वे लोग मन्दभाग्य समझने चाहिएं जो सत्संग में आते हैं—और उन दोषों के सम्बन्ध में व्याख्यान होते हों (जो किसी उस श्रोता में हों) और ठीक उस समय उसे ऊंघ आने लग जाए—और वह अपने दोष सुनने से वंचित रह जाए तो उस जैसा मन्दभागी अन्य कोई नहीं हो सकता। बड़े—बड़े पापी और पतित, पथभ्रष्ट, जब भी क्षण में तरे तो सत्संग से तरे। वर्षानुवर्ष जप, तप, यज्ञ करने से, इतना (मनुष्य का) शीघ्र सुधार नहीं हुआ। क्योंकि पापी मन जप—संध्या में भी विषय—विकारों में ही जाता रहता है, एकचित्त नहीं होता। परन्तु सत्संग में रोचक—भयानक बातों के सुनने में एकाग्र हो जाता है, तो सहसा उसके मन पर प्रभाव पड़ जाता है—जिससे उसका उत्थान और त्राण हो जाता है।

३०—१०—३६ सोमवार ४—३५ प्रातः
१४ कार्तिक द्वितीया

सौन्दर्यपूजा बाधक है

सज्जन, धर्मात्मा, सदाचारी, दानी और ज्ञानी भी कलंकित हो जाते हैं। परमात्मा और उनके मध्य में एक

वस्तु बाधक (आवरण) रहती है, जिससे न तो वे प्रभु को पा सकते हैं, न ही संसार की दृष्टि में फिर सज्जन गिने जाते हैं। यद्यपि उनका जीवन निष्पाप ही होता है। उनकी क्रिया, मर्यादा–विरुद्ध होती है। वह रुकावट या अपयश है–रूप आराधना (सौन्दर्य–पूजा)। तथा यह तीन प्रकार की होती है–(१) सात्त्विक (२) राजसिक और (३) तामसिक। तीनों ही बाधक हैं।

(१)सात्त्विक– कई लोग ऐसे सज्जन और सात्त्विक प्रकृति के हैं कि किसी सुन्दर–स्त्री या सुन्दर बालक को देखकर सहसा कह देते हैं कि 'अहा ! प्रभो ! तू धन्य है। गन्दे जल की बून्द से क्या सौन्दर्य उत्पन्न किया। यहां तो कोई बाधा नहीं। यह भी प्रभु की स्तुति, उपासना ही है। परन्तु वे लोग उस स्त्री या बालक से प्यार करने लग जाते हैं। उनके सौन्दर्य पर मोहित होकर व्याकुल रहते हैं। उस मिट्टी के बनाए पुतले के ही अर्पण (अपना हृदय किये हुए) अपने लिए बाधा पैदा कर लेते हैं। परन्तु इनमें भी दो प्रकार के होते हैं–एक चतुर, दूसरे साधारण–बुद्धि। चतुर तो अपनी इस चाह को किसी पर भी प्रकट नहीं होने देते। यहां तक कि अपने मोहित होने का उस सुन्दर या सुन्दरी को भी पता नहीं लगने देते। इनकी आसक्ति इनके आध्यात्मिक मार्ग में बाधा बनी रहती है–

पर ये अपयश से बचे रहते हैं। दूसरे—साधारण बुद्धि के पूर्णतः उन्मत्त और प्रमत्त (उनके पीछे) बन जाते हैं। यद्यपि उनका भाव, अपने मन की प्रसन्तना के अतिरिक्त कोई अपवित्र नहीं होता। इनको बाधा और अपयश दोनों होते हैं।

दूसरे हैं—राजसिक। ये लोग सुन्दर स्त्री या पुरुष (बालक) को देखकर उन पर लट्टू हो जाते हैं—परन्तु अपनी मानसतृप्ति के लिए उन्हें अपनी पुत्री, बहन—भाई या पुत्र का स्थान देकर प्रेम करते हैं। भाव यह है कि पुत्रों की भान्ति चूमते—चाटते खिलाते—पिलाते, सर्वस्व उन पर न्योछावर करते, उन्हें दुःखी दे.ख सह नहीं सकते। उनके दुःख में दुःख, सुख में सुख मान लेते हैं। उन्हें देखे बिना बेचैन और व्याकुल रहते हैं। यहां तक कि एक—दूसरे का उच्छिष्ट खाना—पीना अपने प्रेम का चिह्न समझते हैं। यह वस्तुतः है तो काम—वासना का संस्कार, पर वे लोग अपनी काम—वासना को केवल चूमने—चाटने, खिलाने—पिलाने, छाती से लगाने और सुन्दर वस्त्र पहनाकर सुन्दर रूप—रंग में देख—देख (मन) तृप्त करते हैं। यह प्रेम प्राकृतिक नहीं होता। सम्बन्ध रक्त का नहीं होता। अतः नकली की भान्ति अधिक बढ़ जाने से अपयश का कारण एवं बाधा बन जाता है। तथा

लोगों में उनको पवित्र–भाव से नहीं देखा और माना जाता।

तीसरा है–तामसिक। यह तो अत्यन्त ही नीच है। ऐसे लोग (इस वृत्ति के) सुन्दर स्त्री या बालक को देखकर दूषित–भावना के हो जाते हैं, तथा कुकर्म के लिए उनसे प्रेम पैदा करते हैं। यदि सरलता से कामना तृप्ति न हो तो अपरण करके ले जाते हैं। तथा कई जाल–फैलाकर अपने नीचभाव की तृप्ति करते हैं। ऐसे तीनों प्रकार के मनुष्य प्रभुपूजक नहीं, रूप–पूजक या मिट्टी–पूजक (चर्म–पूजक) ही होते हैं।

क्या बनाए, धारे और पैदा किये जाते हैं

३–१४ सायं

पुत्र पैदा किये जाते हैं, बनाए नहीं जाते। शिष्य बनाये जाते हैं, गुरु धारे जाते हैं। पिता माता न धारे जाते, न पैदा किये जाते हैं, न बनाए जाते हैं, अपितु वे तो स्वयं होते हैं।

३१–१०–३६ मंगलवार १ बजे प्रातः
१५ कार्तिक, तृतीया लगभग

इकट्ठे सोने में दोष

एक–दूसरे के साथ मत सोओ। एक की मैगनीट

(आकर्षण शक्ति) दूसरे में प्रभाव करती है। यदि बुरे संस्कारों वाले का बल अधिक है—तो उसके संस्कार दूसरे पर प्रभावी हो जाएंगे। एक के विचार अच्छे हैं, दूसरे के संस्कार दूषित—तो दूषित संस्कार वाले की आकर्षण शक्ति उधर जाएगी। तब वह अन्दर से इसकी आकर्षण शक्ति को वापस धकेल देगी। बुरा यह न समझे कि मैं अपनी काम पूर्ति अपनी आकर्षण शक्ति से कर लूंगा। अपितु वह उलटा अपयशभागी होगा। जब तक एक जैसे संस्कार न हों—तब तक अच्छा या बुरा (व्यक्ति) एक विचार नहीं बन सकते।

कर्त्तव्य पालन

४ बजे प्रातः
(लगभग)

रात सवा बारह बजे की गाड़ी पर पूज्यपाद श्री महात्मा नारायण स्वामी जी महाराज ने पधारना था। हम सब व्रती बारह बजे जागकर बाहर स्वागत के लिए खड़े हुए। चौधरी नानकचन्द साहब ठेकेदार अपनी मोटर लिवाने के लिए ले गए। एक बजे के लगभग मोटर खाली आई। इस में श्री डॉ० ऋषिकेश जी और लाला वीरभान जी वकील, जो नगर से स्वागत के लिए स्टेशन पर पहुंचे थे (घर कह आये थे कि हम कुटिया पर चले

जाएंगे) इसलिए उन्होंने यहां ही विश्राम किया। मुझे इस समय विचार आया कि मैं दान्तों और स्नान के लिए दातुन और कपड़ा उनको दे आऊं, उठने का विचार किया। इतने में एक तरंग और दौड़ी—कि डाक्टर जी मेरी इस तुच्छ—भावुक सेवा को बहुत महसूस करेंगे। और वे श्री त्यागी जी के कमरे में हैं। त्यागी जी मेरी इस सेवा की (अतिथि की सेवा का कितना ध्यान देता है) प्रशंसा करने लग जावेंगे। अतः अपने को रोक लिया। 'तुम न जावो'। अतिसामान्य मर्यादा पालन करने की भी वे बड़ी प्रशंसा करने लग जावेंगे। न गया। पर फिर जब यज्ञशाला में साढ़े पांच बजे पहुंचा, यज्ञ करने के बाद यह विचार आया—तुमने बड़ी त्रुटि की। तेरा तो यह भाव न था। पर यदि यह भाव होता कि वे प्रशंसा करें। और फिर भी सात्त्विक—वृत्ति से रुक जाता—कि यह रजोगुणी वृत्ति आगई है, इसे दबा देना चाहते, तो भी ठीक न था। मर्यादा का तो उल्लंघन कर ही दिया। इससे उचिततर यह है कि रजोगुण भी रहे—तो भी सेवा अवश्य कर लेनी चाहिए और तमोगुणी वृत्ति भी स्थिर रह सकती थी—यदि तुम दातुन और कपड़ा किसी अन्य को संकेत करके भिजवा देते तो तुम्हारा नाम भी न होता, मर्यादा भी पल जाती और उनकी सेवा भी हो जाती। यह निष्काम हो जाती 'कर्त्तव्य' रूप में।

आध्यात्मिक धोबी की आवश्यकता

६—४५ प्रातः
(लगभग)

धनी व्यक्ति अपने मैले वस्त्र धोबी से धुलवाते हैं—स्वयं धोना नहीं जानते। या कुछेक मानहानि भी समझते हैं। कई इसलिए धुलवाते हैं कि कपड़ा (धोबी का धुला) बहुत उजला होता है। परन्तु निर्धन स्वयं धो लेता है। ऐसे धनियों के जीवन सुधारने के लिए आध्यात्मिक—धोबी की अतीव आवश्यकता है। उनके बिना वे स्वतः ही नहीं सुधर सकते। एवं आध्यात्मिक धोबी (पुरोहित, उपदेशक) ही उनके जीवन को सुथरा बना सकते हैं। वे स्वयं शुभ कार्य भी करें—उनमें मैल (रजोगुण के प्रमाद की) रह जावेगी।

यशस्वी असत्य-प्रबल व्यभिचार

२—११—३६ बृहस्पतिवार
१७ कार्तिक पञ्चमी

३।। बजे
सायं

असत्य कब यशस्वी गिना जाता है ? जब न्यायालयों में इसकी प्रतिष्ठा होने लगे। और व्यभिचार कब प्रबल गिना जाता है ? जब धर्म—स्थानों में भी होने लग पड़े। न्यायालय और धर्मालय पाप के उत्तरदायी हैं। नगरों में होने वाले पाप तब तक निर्बल रहते हैं तथा छुपे हुए

रहते हैं—जब तक न्यायालय और धर्मालय जागृत हों। पर जब इन दो स्थानों में पाप प्रविष्ट हो जाए—तब व्यक्ति, समाज, जाति की नौका डूबने वाली समझनी चाहिए। धर्म—स्थानों पर पाप करनेवाला तो सचमुच अपने इष्टदेव को चिढ़ा—चिढ़ा कर उसके सामने पाप करता है। उससे जरा भी भय और लज्जा नहीं करता। ऐसे व्यक्ति या समाज (जाति) की भी धर्म या इष्टदेवता रक्षा नहीं करता, कदापि नहीं करता। उसे पाप का स्वाद ऐसी गुप्त रीति से चखा के छोड़ता है कि फिर उसे नानी याद आती है।

अभिमान का फल

८।। बजे रात्रि

प्रश्न— जप के समय बार—बार पुराने दोष सामने आते हैं—पीछा ही नहीं छोड़ते। कई बार रुदन भी होता है।

उत्तर— यही तो प्रभु की दात है कि बार—बार दोष को सामने करके याद दिलाता है कि सिकी प्रकार मनुष्य (साधक) को इसका साक्षात् हो। जब तक वह हृदय से अनुभव नहीं करता और रुदन उसका सच्चा नहीं होता तब तक दोष के दर्शन कराता ही रहता है। मनुष्य बड़ा अभिमानी है। वह इतना महादोषी होकर भी फिर संसार में अकड़ से काम करता है। भला जो अपने आप को

महापापी मान लेवे, और दोष ही उसकी आंखों के सामने फिरते रहें—वह तो सदा आंख और गर्दन झुकाए रखेगा। कब गर्दन को ऊंचा करके, अकड़ के बोल सकेगा ? जब तक ऐसी अवस्था नहीं आती—दोष का संस्कार कटता नहीं। जब सच्चे हृदय की तड़प, व्याकुलता और रुदन से वह धुलकर बह जावे—तो फिर सामने ही नहीं आता। जरा भी मनुष्य रुदन करता है—उसका हृदय शान्त हो जाता है—उसे आनन्द आने लगता है, तो वह अभिमान करने लग जाता है कि 'अहो ! मैं बहुत रोया, मेरा अन्तःकरण शुद्ध होगया।' परिणाम यह होता है कि वही पाप फिर आजाता है, और चाहता है कि मैं रोऊं और फिर आनन्द लूं। परन्तु अब रोना भी नहीं आता। अतः अब अत्यन्त अशान्त हो जाता है। मनुष्य तनिक भी प्रभु कृपा—प्रसाद को संभाल नहीं सकता।

२. मन बड़ा चतुर है कि जब निरन्तर कई कई दिन कुवृत्ति नहीं उठती और साधक बड़ा प्रसन्न होता, और ज्यों ही जरा अभिमान करता है कि 'बहुत दिन से अब कोई कुवृत्ति नहीं आई—बहुत अच्छा हुआ। अब मन शान्त है, उज्जवल है।' बस उसी दिन या उसी रात मन अपना नटपन प्रस्तुत कर देता है और वही पाप या कुसंस्कार कुवृत्ति में घेर लेता है।

३–११–३६ शुक्रवार ६–२० प्रातः
१८ कार्तिक, षष्ठी

भोग में रोग

जो लोग कामी, विषयी, व्यभिचारी हैं। पर-स्त्रियों में गमन करते हैं। यदि उनके कर्म ऐसे पुण्य कें हों कि उन्हें मानव योनि मिले–तो उनको मूत्रेन्द्रिय के रोग लगे रहते हैं–सूजाक (मूत्रकृच्छ्र) आतशक (उपदंश-फिरंग रोग) बाद (खून की खराबी) और नाना प्रकार के रोग मूत्रकृच्छ्र, मधुमेह आदि जैसे–जैसे जितने–जितने उनके कृतपाप होते हैं–वैसी–वैसी इन बीमारियों से रोग लगते हैं।

३–११–३६ रविवार ४ बजे प्रातः
२० कार्तिक, नवमी

मूर्खता

१. मूर्ख और अज्ञानी लोग जो सेवा हृदय से भी करते हैं, तो उस सेवा में भी उनकी मूर्खता छिप नहीं सकती। सेवा से पूर्व ही मूर्खता प्रकट हो जाती है। अतः मूर्खों की अतिश्रद्धा और अतिसेवा भी, उनकी प्रशंसा के स्थान पर अपयश ही करा देती है।

२. यदि कोई दुर्विचार–सेवक सेवा करते समय अपने कुविचारों में मन ही मन में आनन्द लूटता रहे और सेव्य अपने गायत्री तथा प्रभु–भजन में लगा रहे–तो इस पर

फिर उस सेवक के कुविचारों की धारा उस पर वह असर नहीं कर सकती क्योंकि सेव्य की नाड़ियां और ज्ञानतत्त्व दूसरे ताल में लगे हुए हैं।

प्रबन्ध करना सेवा है

४।। बजे सायं

प्रबन्धादि करना भी एक सेवा है, पर प्रबन्धक में राजसिक स्वभाव होता है तथा सेवक में सात्त्विक। इसलिए सेवक का दर्जा उससे भी ऊंचा है। उसकी आत्मा तो उन्नत हो सकती है—पर प्रबन्धक की नहीं। यदि प्रबन्धक होकर भी सेवा–भाव से प्रबन्ध करे, तो बड़ा ऊंचा सेवक है।

८–११–३६ बुधवार ५ बजे प्रातः
१३ कार्तिक, द्वादशी

उदारता में प्रेम

प्रेम वही कर सकता है—जिसमें उदारता हो, दान करने की भावना हो। अदानी–कृपण कभी प्रेम नहीं कर सकता। जो लोग उदार भी हैं और दानी भी, यदि उनके दान रजोगुणी हैं। अर्थात् वे दान दिखाकर यश भी चाहते हैं—तो ऐसे उदार और दानी पुरुष जितना दान के भाव में सतोगुण रखते होंगे—उतने में सच्ची प्रेम की मात्रा होगी। तथा जितना रजोगुण होगा—उतनी खुशामद होगी।

उनकी खुशामद बुरी नहीं होती। भलाई करने वाली होती है। परन्तु आत्मिक हित नहीं कर सकती। और जो अदानी एवं अनुदार हों—वे न तो खुशामद कर सकते हैं—न प्रेम।

६—११—३६ बृहस्पतिवार ३ बजे
२४ कार्तिक, त्रयोदशी

गुरु विद्यार्थी है

शरीर के रोग या विकार की औषधि, जो डाक्टर या वैद्य देते हैं, वह रोगी के लिए ही होती है, डाक्टर के लिए नहीं। पर मनो—विकार या मानसिक रोग की औषधि या उपाय जो आध्यात्मिक वैद्य अर्थात् गुरु, उपदेशकादि के अपने लिए भी अवश्य होती है। अपितु ऐसे आध्यात्मिक मानसिक रोगी से पहले उन्हें सवयं अपने पर प्रयोग करनी आवश्यक होती है। आध्यात्मिक वैद्य रोगी के साथ अपने जैसा प्रयोग करता है और शारीरिक वैद्य इस बात से मुक्त है। अतः मानसिक रोग का चिकित्सक भी स्वयं को सदा रोगियों में ही गिनता है। एवं गुरु सदा स्वयं को विद्यार्थी ही बनाए रखता है।

१०—११—३६ शुक्रवार ४ बजे प्रातः
२४ कार्तिक, चतुर्दशी—"दीपमाला"

कमाई, सफाई और रोशनी

दीपमाला का दिन हमें तीन चीजों की शिक्षा देता

है–कमाई, सफाई और रोशनी। प्रत्येक पर्व जाति और व्यक्ति–विशेष के उत्थान के लिए आता है। कई पर्व तो व्यक्ति–विशेष के सम्बन्ध से मनाए जाते हैं और कई प्राकृतिक नियम आदि से होते हैं। वस्तुतः वे मनुष्यमात्र के लिए होते हैं, या वर्ग–विशेष के लिए। परन्तु व्यक्ति का सम्बन्धित पर्व उसके अपने अनुयायियों तक ही सीमित होता है। यह दीपमाला का दिवस प्राकृतिक नियम के अधीन मनाया जाता है। तथा प्रकृतिक–संयोग–वश कई महापुरुषों के देहावसान इस दिन होने के कारण भी साथ मिल गए हैं। ऋतु परिवर्तन के कारण इस दिन लोग मकानों के बाहर से अन्दर सोने लगते हैं। शीत आरम्भ हो जाता है। ग्रीष्म और वर्षा ऋतु के कारण मकानों में मच्छर, कुत, विषैले जन्तु होते हैं–जो काट खाते हैं। गोबर–चूना आदि से सफाई करने पर जन्तु नहीं रहते। अतः सफाई की आवश्यकता पड़ती है। दूसरा–कृषक लोग अन्न बोते हैं–अन्न की वृद्धि करते हैं। तीसरा–रोशनी रात को की जाती है। अन्दर और बाहर प्रत्येक मनुष्य की धारणा उसके अपने ही मन की प्रतिच्छाया होती है। मुझे तो इन तीन चीजों से यह आदेश मिल रहा है कि भवन–पति को भीतर विश्रामार्थ अन्तःशुद्धि की आवश्यकता है। उसे **Disinfect** (कीटाणुहीन) कर दे। जीवात्मा का

भवन अन्तःकरण है। इसकी शुद्धता पवित्रता की आवश्यकता है तथा फिर प्रभुभक्त, योगिजन अपनी कमाई केवल शीत ऋतु में ही कर सकते हैं—गर्मी में उनसे बैठा नहीं जाता। तो प्रभुभक्ति, प्रभुशरण का बीज अपनी अन्तःकरण की भूमि में जितना चाहें—बो दें। तथा शुभकर्म करें। तीसरा रोशनी—ज्ञान की आवश्यकता है। सफाई के पश्चात् अन्तःकरण को उज्ज्वल बनावें ज्ञान की ज्योति से। बाहर से अब अन्दर (अन्तर्मुख) होना शुरू करें। जैसे अब लोग अन्दर जाकर सोवेंगे। गर्मी में भक्त बाह्य वृत्ति रहा—प्रभुभजन नहीं कर सका। अब शीत के कारण अन्दर (अपनी प्रवृत्तियों को) जाकर सुला देवे।

११—११—३६ शनिवार ४ बजे प्रातः
२६ कार्तिक, अमावस

लोभ पापों का मूल है

लोभ का स्थान तो नासिका है। पर यह तीन प्रकार से उत्पन्न होता है। (१) आंख से, (२) जिह्वा से (३) कान से। फिर यह इन तीनों का बन्द कराता है। अर्थात् लोभ एक ऐसी क्रूर—वस्तु है, कि सब ज्ञानेन्द्रियों पर ताला लगा देता है। आंख किसी धन सम्पत्ति को देखती है, तो लोभ उपज आता है। इसी धन के लोभ में लोग झूठ बोलते पाई—पाई, पैसे—पैसे पर, आठ—आठ आने,

रुपये–रुपये के बदले झूठी गवाहियां देते, कई शासनाधिकारी रिश्वत लेकर निरपराधों को फांसी पर लटका देते हैं। घूंस लेकर अपराधियों को और अधिक अपराध करने के लिए साहसी बना देते हैं। वकील, डाक्टर, व्यापारी, दूसरे कार्यव्यवहारी लोग भी इस पैसे के लिए अपना धर्म बेचते हैं। जिह्वा के स्वाद के लोभ में कई निरपराध निरीह प्राणियों को मारते और काटते हैं। बहिश्त, जन्नत या स्वर्ग में हूरों, गुलामों, अप्सराओं के मिलने के प्रलोभन सुन–सुनकर हजारों निरपराध प्राणियों की हत्या (बलि) कर डालते हैं। यह लोभ ही तो पाप का बाप है।

२. जितने भी संसार के कार्य–व्यवहार चलते हैं वे सब लोभ और मोह की सत्ता के कारण से हैं। यदि लोभ और मोह मध्य से हटा (उठा) दिया जाये तो कोई भी कार्य संसार में होता दिखाई न दे।

१२–११–३६ रविवार ४ बजे लगभग
२७ कार्तिक, शुक्ल प्रतिपदा (प्रातः)

मोह पाप की माता है

जितने भी बन्धन संसार में हैं, या परतन्त्रता (गुलामी) दासता है तथा जितने भी भय और शोक हैं–उन सबका कारण मोह है। मोह की उत्पत्ति पृथ्वी से होती है। जैसे

पृथ्वी में पांचों तत्त्व रहते हैं–ऐसे ही मोह में पांचों विषय–काम, क्रोध, मोह, अहंकार समाये हुए हैं। क्योंकि मोह का स्थान मन है, और मन सब ज्ञानेन्द्रियों–कर्मेन्द्रियों पर शासन करता है, सब इसी के आज्ञाकारी तथा इसी की सहायता से अपना–अपना काम कर सकते हैं। अत एव मोह का जीतना अति–अति कठिन है। जैसे मन का जीतना कठिन है, ऐसे मोह का। जब मोह जीता जावे–तो मन स्वतः जीता गया। जब तक मोह का लेशमात्र भी मन में है–तब तक मुक्ति हो ही नहीं सकती। लोभ पाप का पिता है–तो मोह पाप की मां है। माता की शक्ति पिता से अधिक मानी गई है। कैकेयी जैसी विश्वासपात्र रानी–जो भगवान् राम के राजतिलक के लिए अतिप्रसन्न थी। मन्थरा के कहने पर भी उसने यही उत्तर दिया–कि राम भरत से मुझको बहुत प्रिय है। परन्तु जब उसने भरत का रूप सामने दिखाया–तो कैकेयी को भरत का मोह हो गया। अब राम सौतेला पुत्र दीख़ने लगा तथा उसे वनवास दिला के छोड़ा। धृतराष्ट्र बड़ा धर्मात्मा था। अपने भतीजों के राज्य की रक्षा ईमानदारी से करता रहा। परन्तु जब दुर्योधन (पुत्र) के मोहवश होगया–तो जैसे आंखों से अन्धा था–वैसे अब धर्म–विश्वास–न्यास से भी अन्धा बन गया। पृथ्वी के गुण, कर्म, स्वभाव को धारण करने से मोह प्रेम में परिवर्तित होजाता है एवं जीता जाता है तब कोई पाप नहीं होने पाता।

१३–११–३६ सोमवार ३–३० बजे
२८ कार्तिक, द्वितीया (प्रातः)

सुधार की भावना

जो व्यक्ति हृदय से अपना सुधार चाहता है और सदा उसका पग उन्नति की ओर रहता है तथा साधना करने में लगा रहता है तो उसे जो कोई भी, चाहे अपना हो या पराया, छोटा हो, नीच हो या बड़ा हो, धर्मात्मा हो, उसको कोई त्रुटिं, अवगुण, व्यसन, दोष, भूल बतलाया है–एकान्त में या सर्वसाधारण में, शुभ–भावना से या लोगों की दृष्टि से गिराने के भाव से, तो उस साधक को बड़ी प्रसन्नता होती है तथा वह भद्र–भावना से उसका उपकार मानता है। एवं उसके लिए अपने हृदय में मान और श्रद्धा बनाए रखता है। पर जो मनुष्य अपनी भूल या दोष सुनकर घबराता या चूं–चां करता, कुढ़ता या बुरा मानता है–समझो कि वह अभी अपना हितचिन्तक (पूर्णरूप से) नहीं बना।

१६–११–३६ बृहस्पतिवार ४ बजे
प्रथमा मार्गशीर्ष (प्रातः)

संगत का प्रभाव

अपने पास बैठनेवालों का ध्यान रखो। जिस विचारधारा से लोग बैठे होंगे, वैसे ही तुम्हारे चारों ओर (हाला) चक्र बन जाएगा। दिन या रात्रि के समय देर तक बहुत से

मनुष्य प्रेम–भाव से बैठे रहते हैं–परन्तु उनमें से कई एक केवल मर्यादा, लोकमर्यादा या शास्त्रमर्यादा पूरी करने के लिए आते हैं। कई अपने स्वार्थ के लिए, कई समय काटने (मनोरंजन) के लिए तथा कई प्रेम के कारण। परन्तु जो जन हृदय से चाहते हैं कि चले जावें–अपना आराम या काम भी करना है और इधर विवशता से, लज्जा से विवश होकर बैठे रहते हैं–उनके यह भाव अधिक हाला बनाते हैं और वे ही परमाणु–उस साधु या महापुरुष के लिए हानिकारक बननेवाले होते हैं। अतः सावधान बनना चाहिए। ऐसे पूज्य, महात्मा या साधु–सन्त को, या तो वह अपना ही नियम नियत करके बोले, या दूसरों को यह सिद्धान्त समझा देवे। सब कोई स्वतन्त्रता से बैठे, उठे। विवशता से बैठनेवाले और प्रेम का साधन समझनेवाले–परतन्त्रता के परमाणु पैदा करते हैं।

१७–११–३६ शुक्रवार ५।। बजे
२ मार्गशीर्ष, षष्ठी प्रातः

जन्मदिन मनाने का तात्पर्य

बड़े–बड़े व्यक्ति अपने बालकों के प्रतिवर्ष जन्मदिन मनाते हैं। अतः प्रसन्नता करते हैं, दान–पुण्य आदि भी करते हैं। कई तो लंगर भी चलाते हैं निर्धनों के लिए। एवं इष्ट–मित्र–सम्बन्धियों को भी निमन्त्रित करते हैं।

अनाथों की अन्न–दान, वस्त्रादि से सेवा करते हैं। परन्तु व्यवहारी–संसारी होने के कारण उनको इसका महत्त्व ज्ञान नहीं–कि क्यों मनाना चाहिए ? वास्तविक अभिप्राय तो यह होता है कि बालक पर इस संस्कार–कर्म का प्रभाव पड़े। सन्तान को ऐसा बनाना चाहिए कि उसका जन्मदिन संसार के लोग मनावें, ऐसा अमर नाम पैदा करे। इसके लिए आवश्यकता है–पांच वस्तुओं को प्राप्त करके उन्हें प्रभु–प्रजा के अर्पण करना। साधारण मनुष्य तो, अन्न, पशु, प्रजा ही चाहते हैं। अन्न में सब प्रकार के धन सम्मिलित हैं तथा पशु में सब प्रकार के प्राणी (जो मानव आवश्यकताओं के लिए आवश्यक हैं)। प्रजा से मित्र, परिवार, नौकर आदि। परन्तु दान वे केवल अन्न–धन या पशु का ही करते हैं। बड़ा दानी अधिक से अधिक यह ही कर सकता है कि वह अन्न का क्षेत्र (लंगर) चलाए रखता है। इसी से ही वह बड़ा दानी समझा जाता है और विशेषज्ञ मनुष्य दो वस्तुएं और भी मांगते हैं–प्रकाश और ब्रह्मवर्चस, (प्रभुभक्तों, योगियों के सहवास से ब्रह्म–विद्या, ब्रह्म–तेज)। जो इन पांच वस्तुओं को अर्थात्– प्रकाश, प्रजा, पशु, ब्रह्मवर्चस और अन्न पाकर प्रभु–अर्पण कर देता है–वही अमर हो जाता है और उसी का नाम जाति–देश मान से लेता, और उसी का ही जन्मदिन

मनाया जाता है। ऐसे लोग महापुरुष कहलाते हैं। यही हवन मन्त्रों में से **'ओं अत्यन्त इध्म आत्मा जातवेदस्'**। मन्त्र में इन पांचों का वर्णन है।

१८–११–३६ शनिवार ४।।। बजे (प्रातः)
३ मार्गशीर्ष, सप्तमी

प्रभु कां भूः स्वरूप

प्रश्न– प्रभु का स्वरूप कैसे जाना जाए, जिससे पृथ्वी का कोई शत्रु हरा न सके ?'

उत्तर– "भूः" नाम है ऋग्वेद का। ऋग्वेद पृथ्वी से लेकर सूर्य पर्यन्त अर्थात् सब (प्रकृति के) पदार्थों का ज्ञान कराता है। (इस शरीर में) जिसकी प्रतिनिधि है वाणी। वाणी है कर्मेन्द्रिय। 'भूः' का अर्थ वाणी है, और कर्म भी है। अतः कर्म कैसे करें ? कर्म करें–जैसे पृथ्वी करती है। 'भूः' का अर्थ पृथ्वी भी है।

२०–११–३६ सोमवार ४।। बजे लगभग
५ मार्गशीर्ष, नवमी (प्रातः)

मनुष्य की वाणी साख है

मनुष्य की पत (प्रतिष्ठा) साख (विश्वास) की जामिन (प्रतिभू) वाणी ही है। जब कभी सुन्दर नारी देवी से बात करता है–तो उसे विश्वास दिलाने और लोगों में अपनी साख देने के लिए, बार–बार कहता है–'बहन जी, यह

बात ऐसी है। 'बेटी ! मैंने यह कहा'—आदि आदि। भाव यह कि एक—एक वाक्य के साथ—साथ उसे कहना पड़ता है। यदि उसके मन में विकार भी उत्पन्न हो—तो उसे ऐसा बार—बार कहने से जहां उस देवी तथा अन्य लोगों की भ्रांत धारणा नहीं होती वहां वह अपने मन पर भी अंकित कर लेता है, तथा पाप से बचा रहता है। अपनी सगी मां, बहन, पुत्री हो, तो उससे बात करने में बार—बार दुहराने की किसी को आवश्यकता नहीं पड़ती। क्योंकि यहां विश्वास पहले ही से (सच्चा) है।

२१—११—३६ मंगलवार ४।। बजे लगभग
६ मार्गशीर्ष, दशमी (दिन)

अपने अन्दर झांको

मनुष्य को गन्दगी की दुर्गन्ध दूर से ही आजाती है, तथा वह उससे नाक—भौं चढ़ाता, तथा घबराता और भागना चाहता है। यदि किसी मकान में गन्द—खाद भरा हो तथा दरवाजा भी उसका बन्द हो—तो पास के मकान में बैठे मनुष्य को दुर्गन्ध आती है। मच्छर आदि उसमें पैदा होकर पड़ोसियों को काटते—सताते हैं। पर वाह ! प्रभु की लीला !! कि मनुष्य के अपने भीतर कितना मैल गन्दगी—विष्ठा, मूत्र, थूक, खंगार, कफ, हड्डी भरी है इस पर पर्दा केवल साधारण चर्म का है, तथा सूंघनेवाला भी

अन्दर बैठा हुआ है। परन्तु उसे कभी भी दुर्गन्ध आई ही नहीं। यद्यपि वह मलमूत्र जब गुदा से बाहर होता है–उसी समय दुर्गन्ध आने लग जाती है। यदि मनुष्य को अपने अन्दर से भी दुर्गन्ध आती तो उसका जीना दूभर हो जाता।

१२–११–३६ बुधवार ३ बजे प्रातः
७ मार्गशीर्ष, एकादशी

अपनी प्रतिज्ञाएं सामने रखो

जो प्रतिज्ञाएं या उत्तम कर्म करने की भावनाएं ठानी हैं उसे एक गत्ते या कागज पर संग्रह कर लेवें, तथा उसे प्रतिदिन हवन के पश्चात् या पूर्व, कई दिन देख लिया करें। जिससे उसे स्मरण हो जावें तथा उन पर आचरण कर सकें। मनुष्य अल्प है–शीघ्र भूल जाता है, जिस बात का स्वभाव (अभ्यास) न हो। अतः स्वभाव का अंग बनाने के लिए प्रतिदिन इसका स्वाध्याय करना चाहिए। भूः, भुवः, स्वः। भूः एक अक्षर है–'भुवः' दो अक्षर। 'स्वः' दो का एक बना हुआ। प्रभु का भक्त (या अग्निहोत्री) इसी से विश्वसेवक बनता है। 'भूः'–(प्रकृति) का अर्थ है सत्, 'भुवः' (जीव) चेतन–सत्। 'स्वः' (परमात्मा) आनन्द जब जीव अपने को आनन्दस्वरूप बनाना चाहता है, तो अपने आपको इस प्रभु में लीन कर देता है।

२. स्लेट पर पैंसिल लिखती है—जब हाथ में काबू हो। पर जब हाथ से पैंसिल निकल जावे—तो वह कैसे और क्यों लिख सकती है ? ऐसे ही जब मन हाथ से निकल जावे—तो क्या लिखेगा ?

२६—११—३६ रविवार ४ बजे
११ मार्गशीर्ष, पूर्णमासी प्रातः

अणुवीक्षण-दूरवीक्षण

जीवात्मा को (मनुष्य को) दो प्रकार के यन्त्र मिले हुए हैं—एक अणुवीक्षण और दूसरा—दूरवीक्षण। प्रकृति—अनुवीक्षण है—और परमात्मा—दूरवीक्षण। जब अणुवीक्षण आंख पर चढ़ाए रखता है—तो उसे प्रकृति का थोड़ा—सा सुख भी बड़ा सुख प्रतीत होता है तथा प्रकृति का थोड़ा—सा दुःख भी बड़ा दुःख प्रतीत होता है, छोटा—सा भय भी बड़ा भय दिखाई देता है। क्योंकि संसार में सुख—दुःख अपने (हमारे) कर्मों का ही फल हैं। तथा हमारे कर्म परमात्मा से चोरी करते हैं। अधिक कर्म हमारे दुःखदायी होते हैं तथा सुख के कम। इसलिए संसार में हमें दुःख ही दिखाई देता है। पर जिनकी आंखों पर दूरवीक्षण लगा हुआ है—वे बहुत दूर की (भविष्यकाल की) देख लेते हैं। परमात्मा का संगी इस दूरवीक्षण से दूर से दूर (मुक्ति के) सुख आनन्द को भान करने लग जाता है। इसके लिए फिर स्वर्ग है।

महान् आश्चर्य

२. संसार में सबसे बड़ा आश्चर्य यह है कि मेरी आंखें मुझे नहीं दीखती—अपने आपको नहीं देखतीं, अपने अन्दर नहीं देखतीं, अपने पड़ोसी साथियों को नहीं देखतीं। तो फिर क्या मैं जी सकता हूं ? मेरे विनाश और जीवन का रहस्य इसी में है। इसे (आंख को) तो आवश्यकता है, परवशता है—शीशे (दर्पण) की।

१७–११–३६ सोमवार ७ बजे
१२ मार्गशीर्ष, शुक्ल प्रतिपदा प्रातः

'स्वप्न' मनुष्य जीवन का दर्पण

मनुष्य की तीन अवस्थाओं (जागृति, स्वप्न, सुषुप्ति) में से 'स्वप्न' की अवस्था बड़ी मूल्यवान् है। सुषुप्ति अवस्था में जीवात्मा परमात्मा में लीन होता है—पर इससे आत्मा को कोई भी लाभ नहीं होता। हां, इस सुषुप्ति से शरीर तरो–ताजा (हृष्ट–पुष्ट) सुदृढ़, स्वस्थ, मस्तिष्क स्वस्थ रहता है।

स्वप्न वह है, जो प्रत्येक धर्मात्मा या पापात्मा को उसकी वास्तविकता का चित्र प्रस्तुत करता रहता है। जितने महापुरुष बने—इसी स्वप्न द्वारा ही वे सचेत होते रहे। स्वप्न जैसा पथ–प्रदर्शक तथा स्वप्न जैसा सच्चा गुरु अन्य कोई नहीं है। साधकगण इस स्वप्न अवस्था का विशेष ध्यान रखा करें।

२८–११–३६ मंगलवार ४।। बजे
१३ मार्गशीर्ष, द्वितीया (प्रातः)

सदाचार एवं स्वत्व की रक्षा

दो वस्तुएं मनुष्य की ठीक रहनी चाहिएं। प्रथम सदाचार (character) द्वितीय–स्वत्व (अधिकार, निज हकूक)।

सदाचार की पवित्रता और रक्षा तो सद्विचारों से रह सकती है। जहां सद्विचार मिलें–वहां का वास रहे तो सदाचार पवित्र बनता है।

तथा स्वत्व की रक्षा 'पवित्रता' उदारता से होती है और इसका साधन है अपनी आकृति को देखने का अभ्यास करना चाहिए। जैसे आंख मूंद लेने पर दूसरों की आकृतियां सामने आ जाती हैं ऐसे ही अपनी पूरी ठीक आकृति (रूप) दिखाई देने लगे।

२–१२–३६ शनिवार ६।। बजे
१७ मार्गशीर्ष, षष्ठी (प्रातः)

गृहस्थ एवं ब्रह्मविद्या ही अन्दर बाहर की पवित्रता का साधन

संसार में दुःख का कारण गृहस्थ और ब्रह्मविद्या का प्रशिक्षण (Training) न होना है। मनुष्य शेष सब कार्यों की शिक्षा लेता है जिससे अर्थ अर्जित होता है। परन्तु

जिससे शरीर, मन, आत्मा, सदाचार की दृढ़ता का सम्बन्ध है उसे सीखता ही नहीं। यदि इन दोनों विद्याओं की शिक्षा हो जावे नियम और सिद्धांत को समझकर विवाह हो, और ब्रह्मविद्या हो, तो संसार में स्वर्ग ही स्वर्ग दिखाई देवे। विवाह में गृहस्थ के लिए स्त्री पुरुष को वरती है तथा ब्रह्मविद्या में भक्त भगवान् को वरता है। संसार में सर्वाधिक कठिन काम ये ही (दोनों) हैं। गृहस्थ का सम्बन्ध बाहर से है, और ब्रह्मविद्या का अन्दर से। शिक्षित और सधे हुए गृहस्थी एवं साधक—अन्दर बाहर से पवित्र हो जाते हैं।

७–१२–३६ बृहस्पतिवार ६–४५
२२ मार्गशीर्ष, एकादशी (प्रातः)

शारीरिक और आत्मिक सम्बन्ध में भेद

आजकल सम्बन्ध केवल शारीरिक सम्बन्ध ही समझा जाता है। आत्मिक सम्बन्ध सम्बन्ध की भान्ति नहीं बरता जाता। शारीरिक सम्बन्ध में चाहे कोई वयोवृद्ध हो, या बराबर या छोटा हो, उससे बर्ताव (जितना जितना कोई निकट सम्बन्ध का है) उतना ही उसका मूल्य है। जितनी दूरी का सम्बन्ध है—उतना बर्ताव—सहानुभूति में भी अन्तर पाया जाता है। यद्यपि आत्मिक सम्बन्ध बहुत ऊंचा सम्बन्ध समझा जाता है। परन्तु समय पर इसकी पहचान हो

जाती है। आत्मिक वृद्ध उस समय निकट सम्बन्धी समझा जाता है जब अपने शारीरिक सम्बन्धियों से (जो कुछ बचा–खुचा रहे) उनमें वह श्रेष्ठ और ज्येष्ठ समझा जाता है। उदाहरण के रूप में मेरे सामने मेरा पुत्र है, मेरे भाई का पुत्र है, मेरी बहन का पुत्र है, मेरे मित्र का पुत्र है। ये सब मुझसे छोटे हैं तथा मैं इन सबके लिए वयोवृद्ध हूं। इन सबको काम के लिए पैसे की आवश्यकता है और सबकी एक–सी ही स्थिति है। तो भीतरी रूप से अपने पुत्र के लिए प्रबन्ध करना चाहूंगा। यदि पुत्र को आवश्यकता न हो तथा दूसरों को हो तो फिर मैं अपने भतीजे को श्रेष्ठता दूंगा। मैं उस–उस की (जोखिम) कष्टकर स्थिति अपने ऊपर तभी ले सकता हूं जो मेरे अधिक निकट पड़ता है। आत्मिक सम्बन्ध वर्तमानकाल में गौण समझा जाता है। यदि अपने सम्बन्धीवर्ग में आवश्यकता न हो तो शेष जनता में से मैं अपने आत्मिक सम्बन्धी को निकटतर समझता हूं। मैं अपनी बुआ (पिता की बहन) की अधिक सेवा तब करता हूं तब मेरी अपनी बहन नहीं। जब अपनी बहन हो तो बुआ गौण, तथा बहंन प्रधान (मुख्य) बन जाती है। अपनी भांजी की सेवा तब मुख्य समझता हूं जब अपनी पुत्री न हो। नहीं तो पुत्री मुख्य तथा भांजी गौण बन जाती है।

८-१२-३६ शुक्रवार ६ बजे
२३ मार्गशीर्ष, त्रयोदशी (प्रातः)

उच्छिष्ट भोजन-वर्जित

१. जूठा (उच्छिष्ट) भोजन खाने की इच्छा रखने वाला तमोगुणी होता है। जहां उच्छिष्ट खाने में रोग का प्रभाव इसमें आता है वहां विचारों का प्रभाव भी आता है। साधक को तो बड़ा ध्यान रखना चाहिए। जिस व्यक्ति की वृत्ति लोभ की, स्वाद लेने की, कामुकता की हो उनकी जूठन को तो कभी भी नहीं खाना चाहिए।

२. तीन प्रकार से मनुष्य दूसरों का उच्छिष्ट खाता है— एक तो मोहवश। माता–पिता अपने पुत्रों का बचा हुआ, या उनके ही बरतनों में खा लेते हैं। दूसरे लोभवश। दूसरे का अच्छा, स्वादिष्ट भोजन बचा देखकर मन में ललचाते और खाते हैं। तीसरे–श्रद्धालु गुण समझकर कि खानेवाले (गुरु, पूज्य, महात्मा) के गुण मुझमें आ जावेंगे। वे भोजन की उत्तमता अथवा साधारणतया स्वादिष्टता या स्वादहीनता विचार किये बिना खाते हैं। इन तीनों में लोभवश खाना अतिनिष्कृष्ट तथा सदाचार बिगाड़नेवाला होता है। मोहवश खाना मध्यम और रजोगुणी है। श्रद्धा और भावना से उच्छिष्ट खाने का विचार उत्तम है—भावनाओं की तुलना से। वैसे उच्छिष्ट भोजन खाना उत्तम भोजन

नहीं गिना जाता, न ही सात्त्विक है। हां, उच्छिष्ट श्रेणी निर्धारण के विचार से उत्तम, मध्यम तथा निकृष्ट (यहां) गिनाए गए हैं।

६–१२–३६ शनिवार ३–४ बजे
२८ मार्गशीर्ष, चौदस (प्रातः)

पारिवारिक प्रसन्नता का फल

परिवार में कमाऊ सन्तान को प्रसन्न रखने से अन्न, वस्तु और मान उनसे अच्छा मिलता रहता है तथा माता–पिता को प्रसन्न रखने से आशीर्वाद और आत्मिक उन्नति मिलती रहती है। स्त्री को प्रसन्न रखने से सन्तोष और शान्ति मिलती रहती है।

१०–१२–३६ रविवार
२५ मार्गशीर्ष, अमावस्या व्रत (प्रातः)

किसी के सुधार के लिए दोष को सर्वसाधारण में प्रकट न करें

अपने मित्र या अपने पुत्र में, परिवार में, अपने समाज में या अपनी जाति में कोई विशेष न्यूनता या दोष देखो तो उसे किसी के सम्मुख प्रकट न करो, इससे बिगाड़ हो जाता है। यदि अनुभव करते हो तो शोधन करो, सुधार करो। स्वयं नहीं कर सकते तो योग्य पुरुषों से सुधार

कराओ। हां, अपने दोषों और त्रुटियों को अवश्य प्रकट करो, परन्तु गर्व से नहीं। नहीं तो ढिठाई आजाएगी। अपनी त्रुटि भी इसलिए प्रकट करो कि संभवतः कोई सुधारक तुम्हारी त्रुटि का सुधार कर देवे।

१५–१२–३६ शुक्रवार ६।। बजे लगभग
३० मार्गशीर्ष, चौथ (प्रातः)

भोजन से सतोगुणी, रजोगुणी, तमोगुणी मनुष्य की परीक्षा

जो पुरुष या स्त्री अपने घर में बनी सब्जी और भोजन को तो पसन्द नहीं करता और पैसे खर्च करके बाजार से सब्जी या भोजन मंगाकर खाना पसन्द करता है वह तमोगुणी वृत्ति का है। वह अपने घर के लिए सौभाग्य–वर्धक नहीं, अपितु भाग्यहीनता के परमाणु पैदा करता है एवं वह सम्पन्न स्थिति का बन नहीं सकता।

जो अपने हाथ की बनाई रसोई के अतिरिक्त दूसरे की बनाई पर सन्तोष नहीं करता, उसे भाती नहीं वह रजोगुणी होता है। उसमें कठोरता और अविश्वास और अभिमान पैदा हो जाता है।

एवं जो घर की (सब प्रकार की) बनी (वस्तुओं) पर सन्तुष्ट तथा प्रसन्न होकर प्रसन्नचित्त से खाता है, वह सतोगुणी तथा भाग्यशाली बनता है।

अशुद्ध वायु का सेवन न करें

२. साधक को अशुद्ध वायु में भजन नहीं करनां चाहिए। एक स्थान पर जब दूसरों के साथ सोना पड़े, तो साधक प्रातः उठकर भजन में लग जाए। क्योंकि दूसरे (भूमि पर) सोये हुओं की अपान वायु से भजन का वायुमंडल बिगड़ जाता है। अतः या तो साधकों के साथ सोये। (जहां वे भी इस समय सब प्रभु–भजन में लग जावें, तथा मलादि त्यागकर निवृत्त हो चुके हों) अन्यथा स्वयं उन (साधक मित्र) से पृथक् होकर शुद्ध वायु में भजन करे।

३. जो मनुष्य अपनी मैल को सूंघकर प्रसन्न होता है अर्थात् अपने डकार, अपानवायु, पसीना, शारीरिक मल आदि में निकली वायु को सूंघकर प्रसन्न होता है उसमें यह (संस्कार) तमोवृत्ति के कारण से है, या यकृत् की क्रिया के विकार से।

१६–१२–३६ शनिवार ६। बजे लगभग
प्रथम पौष, पंचमी (प्रातः)

ज्ञानप्राप्ति में एकाग्रता की आवश्यकता

प्रकृति बताती है कि ज्ञान प्राप्त करने के लिए एकाग्रचित्त होना चाहिए। जैसे, आंख जिसको देखना चाहती है, कान जिसको सुनना चाहते हैं, या नासिका

(जिसे) सूंघना चाहती है–तो इन्हें एकरुख (एकवृत्ति) होना पड़ता है। दूसरी ओर वृत्ति की नहीं कि लक्ष्य–प्राप्ति से वंचित होगए। विद्यार्थी को सदा ध्यान रखना चाहिए।

प्रत्येक इन्द्रिय के दो कार्य

आंखें दो हैं–एक अपनी आन्तरिक त्रुटियों को देखे, दूसरी बाह्य (लोगों की) त्रुटियों (न्यूनताओं) को देखकर उन्हें पूर्ण करावे। कान दो हैं–एक अपनी आत्मा की आवाज को सुने, दूसरा दीन–दुःखी की पुकार (प्रार्थना) को सुनकर उपकार करे। जैसे, नासिका–एक प्राण मनुष्य को जीवन देती है, दूसरा संसार के प्राणियों को प्राण दान देती है। जिह्वा का रस अपने लिए और भाषण का रस दूसरों के कल्याणार्थ है।

१८–१२–३६ सोमवार ६।। बजे
४ पौष सप्तमी (प्रातः)

मधुर वाणी प्रभु की दात है

मधुरवाणी प्रभु की दात है। यह भी बड़े पुण्य कर्मों का फल है जो ऐसी अमूल्य दात को पाकर अपनी ही स्वार्थसिद्धि का इसे साधन बना लेता है–वह घाटे में रहता है। जिसे यह दात मिल गई–उसे तो प्रभु को लूट लेना चाहिए। फिर कब ऐसा अवसर हाथ आयेगा ? मधुर वाणीवाला प्राणियों का सरलता से सुधार कर सकता है,

एवं दुःखी आत्माओं को तृप्त कर सकता है। इसी से प्रभु की प्रसन्नता है। जब प्रभु प्रसन्न होते हैं, तो अपना द्वार खोल देते हैं। यही प्रभु का लूटना है। लोक और परलोक दोनों में, ऐसा मनुष्य तर जाता है। यदि इस दात से अपना पेट अच्छी तरह पाल लिया, शरीर को आराम दे लिया–तो क्या कमाया ? जब आगे का न बनाया, फिर तो घाटा ही घाटा है।

परीक्षा

प्रश्न–प्रभु अपने भक्तों की परीक्षा करते हैं, विपत्तियों में डालते हैं।

उत्तर–प्रभु परीक्षा जिनकी करते हैं उन्हें मार्ग भी स्वयं ही बताते हैं, तथा सहायता भी स्वयं देते हैं एवं पास (उत्तीर्ण) भी स्वयं ही करते हैं, क्योंकि वे ही परीक्षक हैं। वे ही निरीक्षक (Superviser) हैं। प्रभु सामान्य व्यक्ति की परीक्षा नहीं करते। प्रभु की परीक्षा भक्त को देखने के लिए नहीं होती, अपितु जगत् को दिखाने के लिए होती है ताकि जगत् इसका अनुगमन कर सके कि यही मार्ग है।

वह तो (स्वयं) अन्तर्यामी है। सर्वज्ञ है। भक्त की शक्ति को क्या नहीं जानता ? या उसके पूर्व कर्म और संस्कारों को नहीं जानता ? वह तो सब कुछ जानता ही

है। फिर भला प्रभु परीक्षा ले तो कौन पास हो सकता है! मनुष्य तो नितान्त अल्पबुद्धि है। हां, भक्तों की विपत्तियों का नाम पारिभाषिक रूप से परीक्षा है।

२१–१२–३६ बृहस्पतिवार ५–५०
६ पौष, दशमी (प्रातः)

सतोगुणी के बल का ह्रासकर्त्ता यश

सतोगुण में बड़ा बल है। परन्तु जब सतोगुणी मनुष्य में गिरावट आती है (वैसे तो न अकेला रज उसका मुकाबला कर सकता है, न तम) अपितु तमोवृत्त रज को अपना साथी बना आक्रमण कर देती है एवं जितनी भी गिरावटें सात्त्विकवृत्ति मनुष्य को आती हैं, वे एकदम आक्रमणकारी नहीं बनतीं। तम और रज मिलकर सत का रूप धारण करते हैं जो गुण सत में हैं और रज में भी–सर्वप्रथम उसी सांझे गुण सत में हैं और रज में परिवर्तन करते हैं। फिर उसी परिवर्तन से रज में प्रवेश करते–करते तम काबू पा जाता है। सत और रज का सांझा गुण है–यश। बस, यश की इच्छामात्र उत्पन्न हो जाने से सब गिरावटें सरल हो जाती हैं।

यश का अभिमान के साथ गहरा सम्बन्ध है तथा यह अभिमान प्रथम आक्रमण वाणी पर करता है। कान में उत्पन्न होता है–और वाणी उत्पन्न करती है। अतः फिर वाणी हीं कान को प्रसन्न करने के लिए मन के विपरीत

वाणी से (भाव–शब्द) प्रदान करती है। अर्थात् असत्य सा मिथ्याभाषण आरम्भ होता है। अपनी बड़ाई जतलाने के लिए थोड़ा–सा असत्य मिलाना पड़ता है–फिर तम का बल बढ़ने पर कार्य में भी प्रकट हो जाता है–चाहे बहुत देर तक न हो पर प्रारम्भ यश से होने लगता है।

२२–१२–३६ शुक्रवार ६।। बजे लगभग
६ पौष, एकादशी (प्रातः)

अपनी स्थिति (Position) को जानने के लिए चाटुकार को अप्रसन्न कर दो

किसी चाटुकार (खुशामदी) से अपनी स्थिति (Position) जाननी हो, या उसकी प्रकृति परखनी हो तो उसे रुष्ट कर दो। बस, फिर वह तुम्हारे अवगुण चुन–चुनकर लोगों में वर्णन करेगा। प्रायः प्रत्येक व्यक्ति अपने दोषों से अपरिचित रहता है, तथा साथवाले चाटुकारिता से, या इस भाव से (कि मेरा क्या ?) पर्दा डाले रखते हैं, और बड़ाई किया करते हैं।

२३–१२–३६ शनिवार ६–४५
८ पौष, द्वादशी (प्रातः)

दुरितानि परासुव दुरितों का स्वरूप

दुर्व्यसन–वह होता है जो मनुष्यों में बुरी आदतें हों।

दुर्वासना—उसे कहते हैं जो विचार अन्दर बुरे उठें। किसी से बुराई का विचार उठे तथा ऐसे विचार जो अन्दर उठें और आचरण में आवें—तो लोगों को घृणा हो।

कुचेष्टा—बुरी क्रिया, व्यभिचार आदि करने की इच्छा का मन में पैदा होना—कुचेष्टा कहलाती है—यह मन में आती है।

कुसंस्कार—मस्तिष्क में पूर्व—जन्म के बुरे कर्मों का बीज संग्रहीत रहने से सामने आना। वह दुर्वासना और कुचेष्टा का रूप बदलकर (धारणकर) आता है।

अवगुण—जो बुरे विचार दोष बनकर स्वयं को पतन देनेवाले हों, लोगों को नहीं, वे अवगुण कहलाते हैं। तथा ये अपने ही अन्दर छिपे रहते हैं।

दुर्गुण—जिन बुरे गुणों और क्रियाओं से लोगों में घृणा पैदा होती है।

२४—१२—३६ रविवार ५ बजे
६ पौष, त्रयोदशी (प्रातः)

श्रद्धानन्द दिवस

प्रश्न—मनुष्य को मनुष्य कब और कैसे समझा जाता है ?

उत्तर—जब उसका यश गाया जाता हो। यश उसी का होता है जिसके पास बल हो। बल चार प्रकार का

होता है– (१) शारीरिक, (२) बौद्धिक, (३) मांनसिक और (४) आत्मिक।

शारीरिक बलवालों का यश उनके शरीर के साथ तक रहता है। वह एकस्थानी होता है। शरीर के परिवर्तन से यश भी समाप्त हो जाता है।

दूसरा–बौद्धिक बलवालों का यश उनके मस्तिष्क की स्थिरता तक रहता है तथा उतने ही देश तक होता है जितने में उसका राज्य होता है।

तीसरा–मानसिक बलवाले का यश अपनी जाति में होता है तथा मरने के बाद बढ़ता है तथा शताब्दियों तक स्थायी रहता है।

चौथा आत्मिक बल है–जो आत्मा की भान्ति नित्य रहता है और सर्वत्र रहता है।

अब कसौटी यह है कि जिनके शारीरिक (द्रव्य बल सम्मिलित है) बल होते हैं–वे तो पशु की भान्ति आते–जाते हैं। उनका न कोई जन्म–दिवस न मरण दिन मनाया जाता है तथा बौद्धिक बलवालों का जन्म–दिन उनके मस्तिष्क–शासन की विद्यमानता तक मनाया जाता है। मानसिक बलवालों का केवल मरण मनाया जाता है तथा आत्मिक बलवालों का जन्म तथा मरणदिन (दोनों) मनाये जाते हैं। ये महापुरुष अमर हो जाते हैं। आत्मा का बल

बढ़ता है–सत्य को जानकर सत्य–परमात्मा के लिए स्वाहा हो जाने से।

मानसिक बल बढ़ता है–पवित्रता को जानकर उदारता के लिए स्वाहा हो जाने से। बौद्धिक बल बढ़ता है–प्रजा रक्षा के लिए स्वाहा हो जाने पर। शारीरिक बल बढ़ता है अपने स्वार्थ के लिए।

जिनका अपयश होता है, वे तो निर्जीव पदार्थों की भान्ति या कीट–पतंगों की भान्ति पांवों के नीचे कुचले जाते हैं और जिनका न यश, न अपयश, वे पशु के समान हैं।

२१–३–४० बृहस्पतिवार ७ बजे (लगभग)
६ चैत्र, त्रयोदशी (सायं)

पवित्रता से प्रतिष्ठा

मनुष्य चाहे कितना ही धनवान् क्यों न हो, या बलवान् और विद्वान् क्यों न हो। कितनी ही प्रतिष्ठा और शान–मान क्यों क्यों न हो। वह सर्वसंसार के प्राणियों को प्यारा नहीं लग सकता, न ही सबसे प्यार कर सकता है। एक पवित्रता ही है जो सबका प्यारा बनाती है, तथा सबसे प्यार कराती है और पवित्रता ही परम–पवित्र प्रभु के समीप करती है। मनुष्य के जन्म में सबसे पहला कार्य ही उस बालक पर किया गया–वह उसे पवित्र करने का ही

कार्य था। जन्मते ही बालक मल से लथपथ होता है। माता जिस बालक को गर्भ में रखती, कठिन कष्ट और संकट सहती है तथा वह इन सब दुःखों को भूल जाती है, जब यह सुनती है कि मेरा पुत्र जन्मा है। परन्तु फिर भी उस पुत्र को छाती से नहीं लगाती, अपने संतप्त हृदय को तृप्त नहीं करती, जब तक उस शिशु को शुद्ध और पवित्र नहीं कर लिया जाता। ऐसे ही परमात्मन् देव किसी भी पुत्र को बिना पवित्र हुए को, गोद में नहीं लेते। इस पवित्रता का साधन है–ब्रह्मचर्य। जिन इन्द्रियों से मल (गन्द) निकलता है–उन इन्द्रियों के दोषों को निकाल देने से, पवित्रता आती है। आंख की दृष्टि पवित्र हो, और कान में शब्द सुन्दर सुहावने मस्त करते जावें। मुख से कटु, कठोर, असभ्य, अशुभ, असत्य (मिथ्या) शब्द न निकलें। मन में लोभ, ईर्ष्या (कीना) ही न हो। इन मलों (दोषों) से पवित्र कर देने पर मनुष्य प्रभु और प्रभु की प्रजा के समीप हो जाता है।

२२–३–४० शुक्रवार ६ बजे
१० चैत, चतुर्दशी (प्रातः)

तन उजला मन मैला

मनुष्य का शिशु जब जन्मता है–तब शरीर तो उसका अपवित्र होता है तथा अन्तःकरण पवित्र, कोरा (निर्मल)

होता है। पर ज्यों–ज्यों बढ़ता है, समझ आती है, तब मन मलीन होता जाता है, और शरीर को पवित्र किया जाता रहता है। जितना शरीर के मल को साफ करता है उससे अधिक मन पर मैल चढ़ाता है।

पवित्रता स्वभावसिद्ध है

★परमात्मा की सृष्टि में जो उपज पृथ्वी से होती है–अर्थात् पृथ्वी के गर्भ से, जो वस्तु उत्पन्न हुई बाहर आती है–वह सबकी सब, वृक्ष हों या वनस्पति, अन्न हो या औषधि, सब पवित्र दशा में पैदा होती हैं। परन्तु जो उपज (उत्पत्ति) मानवों और पशुओं के गर्भ से होती है–वह सब की सब जन्म से अपवित्र होती है। गाय, बकरी, घोड़ी, गधी आदि सब अपने बच्चों को अपनी जिह्वा से साफ करती हैं और मनुष्य हाथ या कपड़े से। कोई पशु तक भी यह नहीं चाहता कि उसकी सन्तान अपवित्र हो। पवित्रता जीव का स्वभावसिद्ध लक्षण है।

२३–३–४० शनिवार ४–५०
११ चैत्र, पूर्णमासी (प्रातः)

यथा गुण तथा प्रवृत्ति

कामी और लोभी मनुष्य नीचों का सहारा लेता है।

★ यह नोट २७–३–४० से लिया गया है क्योंकि यह अंश चालू विषय से सम्बन्ध रखता है, अतः यहां दिया जा रहा है।

उन्हीं से मित्रता जोड़ता है। उन्हीं के द्वारा अपनी इच्छापूर्ति करता है। अत एव वह नीचों का नीच, दासों का दास होता है। क्रोधी और अहंकारी बड़ों तथा मालिकों की संगति में जाकर पहले उन्हें अपना बनाता है। उसके सम्बन्धियों से प्यार करता, फिर सब पर शासन करने लग जाता है तथा उनकी पूंछ (पिच्छ–लग्गू) बनकर कभी उनकी रक्षा करता, हित–चिन्ता करता, कभी उनको दबाता है। मोह–प्रकृति का मानव बड़े और छोटे में मिल जाता है। बड़ों में बड़ा और छोटों में छोटा बना रहता है। कामी और लोभी को दम्भ से काम लेना पड़ता है। वह अपने जन्म को नष्ट करता (व्यर्थ गंवाता) है। क्योंकि उसे व्यक्तिगत रूप से किसी से हित नहीं होता। उसका प्यार (प्रेम) उसकी नर्मी, उसकी सेवा, सब अपनी स्वार्थपूर्ति के लिए होती है। क्रोधी और अहंकारी में यश की इच्छा की चाह होती है। मोह–प्रकृति का मनुष्य स्वभाव से कोमल–हृदय होता है, अपितु निर्बल–हृदय होता है। जिनमें ये सब अवगुण हैं–न्यूनाधिक, जब–जब जिस अवगुण का वेग होता है–वैसी उनकी दशा हो जाती है।

५।। बजे लगभग (सायं)

होली-सो हो-ली

जैसे होली के दिन तक अन्न और वृक्षों के बौर

जितने पैदा होने होते हैं—हो जाते हैं। उसके बाद न तो अनाज बढ़ता है—न उगता, न पैदा होता है। न ही वृक्षों में अधिक बौर लगता है। अपितु 'जो खेती हो—ली, सो हो-ली। अब प्रभु की लीला से जो रस नीचे से ऊपर आता है—(उसे बढ़ाने के लिए), अब बन्द हो जाता है। तथा सूर्यनारायण अपनी किरण, जिससे वह भूमि से पानी (रस) खींचकर, उन अनाजों में ऊपर पहुंचाता तथा उन्हें हरा—भरा रखता था। अब वह ऊपर पकाना और सुखाना आरम्भ कर देता है तथा आम आदि वृक्षों के बौरों की अम्बियां बनाना, आरम्भ कर देता है। ऐसे ही साधक मनुष्य जो 'हो—लेता' है, सत्संग—स्वाध्याय, भक्ति आदि से वह हो लेता है—फिर उसकी अवस्था यह हो जाती है कि उसे वही सत्संग, स्वाध्याय, भक्ति जो उसे पहले बनाती, उठाती थी, अब उसको परिपक्व करने में लग जाती है। वह अधिक नहीं बढ़ता।

२७—३—४० बुधवार २ बजे
१५ चैत्र, चतुर्थी (दिन)

परिश्रम का फल स्वादु होता है

जो वस्तु या अवस्था (आध्यात्मिक हो, या आर्थिक हो) जितने—जितने परिश्रम से और कष्ट से प्राप्त होती है, उतनी—उतनी उसकी रक्षा का मान होता है। जो वस्तु

बिना कष्ट, परिश्रम और अध्यवसाय के किसी साधन से प्राप्त हो जाती है, उसका मान और मूल्य नहीं होता। अन्त में वह छिन जाती है। आत्मिक भूमिका के यात्रियों को बहुत सावधान रहना चाहिए। वे फिर पछताते हैं जो प्रभु की दया, दात को पाकर संभाल नहीं करते।

गत–जन्म के परिश्रम का फल जो सिद्धि और चमत्कार है, सो बेकार है। क्योंकि वह प्रभु की दात, बिना किसी वर्तमान के परिश्रम से मिली है। वह मनुष्य के अज्ञान में होती है। पर जब पिछले जन्म के परिश्रम का फल अब के घोर परिश्रम के पश्चात् प्राप्त हो तो बहुत ही प्यारा लगता है, ज्ञान सहित होता है। पहली (दशा) में अभिमान और क्रोध, शीघ्रकारिता (अधीरता) साथ ही होती है। पर दूसरी दशा में गम्भीरता, पवित्रता और नम्रता पैदा होती है तथा साथ देती है।

२८–३–४० बृहस्पतिवार ५–४०
१६ चैत्र, पञ्चमी
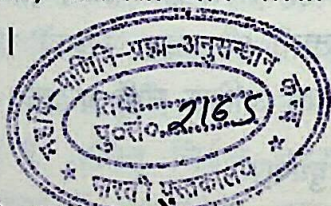
प्रकाश के अभाव में अन्धकार

मनुष्य की अपनी छाया ही उसकी अन्धकार बना देती है। इस कारण कि प्रकाश को पीठ कर दी। छाया शरीर की साथी है–वह किसी समय भी उसका त्याग नहीं करती। वह आगे रहेगी या पीछे। परन्तु उस अवस्था में

छाया भी शरीर में मिल जाती है—जब कि प्रकाश आगे भी हो और पीछे भी। चारों ओर जब (मनुष्य के) प्रकाश हो जावे, तब कोई वस्तु (अपनी या पराई) अन्धकार प्रस्तुत नहीं कर सकती। ऐसे ही मन, जो सूक्ष्म शरीर है उसकी भी छाया सदा मन के साथ रहती है। यदि आत्मा में प्रकाश हो—और मन आत्मा के सम्मुख हो, तो छाया (अज्ञान) पीछे रह जाएगी। जब आत्मा सम्मुख नहीं तो अज्ञान सामने रहेगा। यदि बुद्धि और आत्मा (दोनों) में प्रकाश हो—तो मन कभी अन्धकार नहीं देखता, निष्पाप हो जाता है।

२६—३—४० शुक्रवार ७ बजे
१७ चैत्र, षष्ठी (प्रातः)

पवित्रता कहां से मिलती है ?

पवित्रता उनसे प्राप्त होती है—जो नियमबद्ध रहते हैं। मनुष्य के सामने पशुओं की, मनुष्यों की और देवताओं की सृष्टि उदाहरणार्थ द्रष्टव्य है।

पशु तो जो नियमबद्ध रहते हैं—वे विवशता से बंधे—बंधाए रहते हैं। अतः जो मनुष्य बंधे—बंधाए डियोटी (कर्त्तव्य) करता है—वह परतन्त्र और दास है। इससे पवित्रता नहीं आती।

दूसरा है—मानव। माता—पिता भी 'देव' कहलाते हैं—पर

वे केवल अपने ही पुत्र (सन्तान) के लिए। इनमें अपवित्रता–पवित्रता रहती है। वे कभी नियम का पालन कर सकते हैं, कभी भंग कर देते हैं। अब उनसे पूरी पवित्रता प्राप्त नहीं होती।

तीसरे हैं–देव। जो पूरे नियमबद्ध रहते हैं। अतः वे स्वयः पवित्र हैं और सबको पवित्र करते हैं। मनुष्य यदि पवित्र होना चाहे–तो उनकी भान्ति नियमबद्ध होकर उनके से काम करे।

३०–३–४० शनिवार ६–१५
१५ चैत्र, सप्तमी (प्रातः)

माता की आशीष 'कोसी वा न लग्गी'

माता अपने पुत्र को आशीष दिया करती है पुत्र कोसी वा न लग्गी (पंजाबी उक्ति)–अर्थात् पुत्र तुम्हें तप्त वायु न लगे। माता की यह भावना कितनी ऊंची है और उसमें कितना गम्भीर रहस्य भरा है–इन चार शब्दों में। खेद है कि माता शाब्दिक, शारीरिक आशीष देती है, उसके रहस्य को नहीं जानती, कि क्यों कह रही है ? भला, विचार किया जावे, कि यदि गर्म–वायु तो न लगे, ठण्डी लग जाये–तो निमोनिया हो जाएगा। फिर इसका क्या आशय होगा ? लोग कहते हैं कि माता का आशय है कि 'पुत्र तुम्हें कोई कष्ट–संकट न आए, दुःख न आए।

परन्तु वास्तविक अर्थ यह है कि गर्म वायु किनको लगती है ?—यह लगती है पशु को, जिन बेचारों को स्थान नहीं। और लगती है—नौकरों को, श्रमिकों और दासों को। धनाढ्य तो ज्येष्ठ-आषाढ़ की गर्मी में अन्दर बैठे आराम किया करते हैं। खसखस की पट्टियां लगा लेते हैं। पर पशु भार उठाए—धूप में कमा रहे हैं तथा नौकर—श्रमी भी कड़कती धूप में बोझा उठाए काम करते हैं, पसीने से तर रहते हैं। बेचारे जोर से हांपते रहते हैं। माता तो अपने पुत्र को स्वामी बनने, मालिक बनने की तथा स्वतन्त्र रहने की आशीष देती है तथा दासता के बंधन से ऊंचा उठाना चाहती है।

७ बजे (सायं)

माताएं सावधान रहें

(१) जिन माताओं के बच्चे बार—बार बाजार की गन्दी वस्तुओं पर ललचाते हैं, तथा खाते रहते हैं तथा घर की बनी वस्तुओं पर सन्तोष नहीं करते। माताएं उनको पथ्य नहीं करातीं (रोक—थम नहीं करतीं) बच्चे बड़े होकर अपनी स्त्री में सन्तोष करनेवाले नहीं बनेंगे। इसका (Character) के साथ बड़ा सम्बन्ध है।

(२) जो माताएं गाजर, मूली, साग और सब्जी आदि दूसरे सौदों में (जो गलियों में बिकते हैं) भाव चुका लेने

पर भी बाद में 'झूंगे' (रियायत और थोड़ा) मांगती और उठाना चाहती हैं तथा लेती हैं, झगड़ती हैं। उनके बनाए भोजन कभी पवित्रता प्राप्त नहीं कर सकते।

३१–३–४० रविवार ७ बजे
१६ चैत्र, अष्टमी (प्रातः)

दान का फल सीमित एवं असीम

(१) सब दानों का फल मिलता है–दानी व्यक्ति को पर ब्रह्मदान का फल दानी को जीते जी एवं मरणोपरान्त पैंशन के रूप में शताब्दियों तक उसकी संतति को मिलता रहता है। एक भक्त प्रभु का प्यारा, प्रभु के नाम का दान संसार में फैलाता है। उसके पश्चात् उसकी संतति पूजित होती रहती है।

मानव पशु से हीनतर तथा अमूल्य प्राणी है

(२) कहा जाता है कि पशुओं की तो मरने के बाद भी प्रत्येक वस्तु काम आंती है। परन्तु मनुष्य की सब वस्तुएं व्यर्थ हैं। मनुष्य जब तक पाशविक कार्य करता है–वह सारे का सारा व्यर्थ (बेकार) है। पशु से हीनतर (बुरा) है। परन्तु जब देवता बन जावे–तो उसकी चरणधूलि लोग माथे पर लगाते हैं। मरने के पश्चात् उसकी भस्म भी पूजी जाती है, इतना अमूल्य है यह।

शुभं भवतु।

ओ३म्

पूज्य गुरुदेव महात्मा प्रभु आश्रित जी महाराज द्वारा लिखित पुस्तकों की सूची

गायत्री	25.00	सन्ध्या सोपान	20.00
दृष्टान्त मुक्तावली	25.00	मन्त्र योग भाग 1 और 2	25.00
पृथिवी का स्वर्ग	10.00	मन्त्र योग भाग 3 और 4	24.00
पथ–प्रदर्शक	5.50	गृहस्थाश्रम प्रवेशिका	12.00
चमकते अंगारे	4.00	वर घर की खोज व	
जीवन सुधार	6.00	योग युक्ति	6.00
मनोबल	16.00	विचार विचित्र	6.00
जीवन निर्माण	12.00	सेवाधर्म	6.00
जीवन यज्ञ	7.00	स्वप्न गुरु तथा	
सौम्य सन्त की प्रार्थनाएं	10.00	देवों का शाप	4.00
गायत्री कुसुमाञ्जलि	2.00	निरकार साकार पूजा	3.00
बिखरे सुमन	5.00	एक अद्भुत किरण	4.00
साधना प्रचार	5.00	निर्गुण सगुण उपासना	8.00
अमृत के तीन घूंट	3.00	जीवन गाथा	5.00
आदर्श जीवन	5.00	दुर्लभ वस्तु	2.00
उत्तम जीवन	0.40	भागवान् गृहस्थी	3.00
आत्म चरित्र	9.50	संभलो	3.00
अध्यात्म सुधा भाग चार	25.00	हवन मन्त्र	3.00
कर्म भोग चक्र	26.00	डरो वह बड़ा जबरदस्त है	6.00
गृहस्थ सुधार	24.00	रहस्य की बातें	20.00
प्रभु का स्वरूप	16.00	सामवेद	50.00
यज्ञ रहस्य	26.00	यजुर्वेद	60.00

पर भी बाद में 'झूंगे' (रियायत और थोड़ा) मांगती और उठाना चाहती हैं तथा लेती हैं, झगड़ती हैं। उनके बनाए भोजन कभी पवित्रता प्राप्त नहीं कर सकते।

३१–३–४० रविवार ७ बजे
१६ चैत्र, अष्टमी (प्रातः)

दान का फल सीमित एवं असीम

(१) सब दानों का फल मिलता है–दानी व्यक्ति को पर ब्रह्मदान का फल दानी को जीते जी एवं मरणोपरान्त पैंशन के रूप में शताब्दियों तक उसकी संतति को मिलता रहता है। एक भक्त प्रभु का प्यारा, प्रभु के नाम का दान संसार में फैलाता है। उसके पश्चात् उसकी संतति पूजित होती रहती है।

मानव पशु से हीनतर तथा अमूल्य प्राणी है

(२) कहा जाता है कि पशुओं की तो मरने के बाद भी प्रत्येक वस्तु काम आंती है। परन्तु मनुष्य की सब वस्तुएं व्यर्थ हैं। मनुष्य जब तक पाशविक कार्य करता है–वह सारे का सारा व्यर्थ (बेकार) है। पशु से हीनतर (बुरा) है। परन्तु जब देवता बन जावे–तो उसकी चरणधूलि लोग माथे पर लगाते हैं। मरने के पश्चात् उसकी भस्म भी पूजी जाती है, इतना अमूल्य है यह।

शुभं भवतु।

ओ३म्

पूज्य गुरुदेव महात्मा प्रभु आश्रित जी महाराज द्वारा लिखित पुस्तकों की सूची

गायत्री	25.00	सन्ध्या सोपान	20.00
दृष्टान्त मुक्तावली	25.00	मन्त्र योग भाग 1 और 2	25.00
पृथिवी का स्वर्ग	10.00	मन्त्र योग भाग 3 और 4	24.00
पथ–प्रदर्शक	5.50	गृहस्थाश्रम प्रवेशिका	12.00
चमकते अंगारे	4.00	वर घर की खोज व	
जीवन सुधार	6.00	योग युक्ति	6.00
मनोबल	16.00	विचार विचित्र	6.00
जीवन निर्माण	12.00	सेवाधर्म	6.00
जीवन यज्ञ	7.00	स्वप्न गुरु तथा	
सौम्य सन्त की प्रार्थनाएं	10.00	देवों का शाप	4.00
गायत्री कुसुमाञ्जलि	2.00	निरकार साकार पूजा	3.00
बिखरे सुमन	5.00	एक अद्भुत किरण	4.00
साधना प्रचार	5.00	निर्गुण सगुण उपासना	8.00
अमृत के तीन घूंट	3.00	जीवन गाथा	5.00
आदर्श जीवन	5.00	दुर्लभ वस्तु	2.00
उत्तम जीवन	0.40	भागवान् गृहस्थी	3.00
आत्म चरित्र	9.50	संभलो	3.00
अध्यात्म सुधा भाग चार	25.00	हवन मन्त्र	3.00
कर्म भोग चक्र	26.00	डरो वह बड़ा जबरदस्त है	6.00
गृहस्थ सुधार	24.00	रहस्य की बातें	20.00
प्रभु का स्वरूप	16.00	सामवेद	50.00
यज्ञ रहस्य	26.00	यजुर्वेद	60.00

आर्यसमाज के नियम

१. सब नित्य विद्या और जो पदार्थ विद्या से जाने जाते हैं, उन सबका आदि मूल परमेश्वर है।

२. ईश्वर सच्चिदानन्दस्वरूप, निराकार, सर्वशक्तिमान्, न्यायकारी, दयालु, अजन्मा, अनन्त, निर्विकार, अनादि, अनुपम, सर्वाधार, सर्वेश्वर, सर्वव्यापक, सर्वान्तर्यामी, अजर, अमर, अभय, नित्य, पवित्र और सृष्टिकर्त्ता है, उसी की उपासना करनी योग्य है।

३. वेद सब सत्य विद्याओं का पुस्तक है। वेद का पढ़ना-पढ़ाना और सुनना-सुनाना सब आर्यों का परम धर्म है।

४. सत्य के ग्रहण करने और असत्य के छोड़ने में सर्वदा उद्यत रहना चाहिये।

५. सब काम धर्मानुसार अर्थात् सत्य और असत्य को विचार करके करने चाहिये।

६. संसार का उपकार करना इस समाज का मुख्य उद्देश्य है अर्थात् शारीरिक, आत्मिक और सामाजिक उन्नति करना।

७. सबसे प्रीतिपूर्वक धर्मानुसार यथायोग्य वर्तना चाहिये।

८. अविद्या का नाश और विद्या की वृद्धि करनी चाहिये।

९. प्रत्येक को अपनी ही उन्नति से सन्तुष्ट न रहना चाहिये किन्तु सबकी उन्नति में अपनी उन्नति समझनी चाहिये।

१०. सब मनुष्यों को सामाजिक सर्वहितकारी नियम पालने में परतन्त्र रहना चाहिये और प्रत्येक हितकारी नियम पालने में सब स्वतन्त्र रहें।